बिनती

दया मुझ पर कर दो मेरे राधास्वामी।। टेक।।
ये किस्ती भंवर में रहे डिगमिगाती।
करो पार बन ना खुदा राधास्वामी।।
बही कर्म की बढ़ती जाती है छिन छिन।
मेख अपनी अब तो चला राधास्वामी।।
जगत दुक्ख में मैं फिरा मारा मारा।
मेहर से लगा अब चरन राधास्वामी।।
बहुत ढूँढा तब मैंने पाया हे सतगुरू।
रहूं अब तो संग में सदा राधास्वामी।।
कसूरों के कारण शरमिन्दा बहुत हूं।
करो माफ मुझको मेरे राधास्वामी।।
तड़फता हूं दरशन को हे मेरे सतगुरू।
हरो दर्श दे कर व्यथा राधास्वामी।।
रहूं नाम रटता मैं अन्तिम क्षणों तक।
दया मुझ पर ऐसी करो राधास्वामी।।
मैं तुम्हारा और तुम मेरे ही हो सही है।
मैं प्रीतम की प्रतिमा बनूं राधास्वामी।।
जहां भी जी चाहे ले जा कर के रख दो।
निरखता रहूं बस तुम्हें राधास्वामी।।
तुम्हारी मेहर का भरोसा है मुझको।
मेहरबानी का शुक्रिया राधास्वामी।।

VISIT US ON:
www.akhandmanavtadham.in

सत्तरहवां समुल्लास
सीता का विलाप

इधर लड़ाई ठनी है। उधर सीता अकेली अशोक बन में बैठी हुई राम के मिलाप के दिन गिन रही है।

सूरज डूबने के समय त्रिजटा उसके पास आई। नमस्कार करके बैठ गइ और युद्ध के समाचार सुनाने लगी।

वह बोलीः– 'राम के बाणों से कुम्भकरण, मेघनाद और सारे निशाचर मर मिटे। राक्षस कुल का नाश हो गया। रावण ही रावण रह गया। वह राम के बाण और रीछ बंदरों के पत्थरों की चोट से नहीं मरता। कभी एक से अनेक हो जाता है, कभी एक का एक रह जाता है और सिर, भुजायें कटती हैं तो और नये नये आकर लग जाती हैं। मारते मारते सब थक गये वह जैसे का तैसा है। मरता नहीं जैसे अमर होकर आया है।

सीता रो पड़ी! 'यह उसका दोष नहीं है मेरे काल का दोष है। इसी काल ने मेरी बुद्धि भ्रष्ट की। मैंने राम को मायावी हिरन मारने को भेजा। इसी काल ने मुझे भरमा दिया। मैंने लक्ष्मण का कहना नहीं माना। उनसे दुरवचन कह दिये। उसी काल ने मुझे यहां लाकर कारागार में ड़ाल दिया और राम के वियोग का दुख दे रहा है। न वह मरता है न मैं जीती हूं। धिक्कार है मेरे इस जीने पर!'

त्रिजटा–'ऐसा न कहो! जब राम ने इतना कर लिया है तो वह रावण को भी मार गिरायेंगे। अभी उसे खिला रहे हैं और देखते हैं कि वह कितने पानी में है।'

सीता–'यह सब सही! मैं तो मर रही हूं। रावण मरता क्यों नहीं! और राक्षसों के समान उसे भी अब तक मर जाना चाहिए।'

त्रिजटा–'मैं इसका कारण जानती हूं।'

सीता–'वह क्या है मुझे भी बता दे।'

त्रिजटा–'कारण यह है कि तुम जगत जननी और जगत जीवन हो! रावण ने अपने ध्यान योग के बल से अपने हृदय कमल में तुम्हारे रूप की एक प्रतिमा बना रक्खी है। तुमको अपने मन में बसा रखा है। राम उसके हृदय को तुम्हारे प्रेम के कारण वाण नहीं मारते और वह तुम्हारा ध्यान नहीं छोड़ता। मरे तो कैसे मरे। मर्म स्थान में बाण नहीं लगते। सिर और भुजा काटे जा रहे हैं। जब उसे थोड़ी देर के लिये

तुम्हारे रूप की विस्मृति हो जायगी और हृदय में राम बाण लगेगा, उसी समय उसकी मृत्यु आ जायगी।

सीता हंसकर बहुत प्रसन्न हो गई। राम को मेरा स्मरण इतना है। क्या मैं इतना सामर्थ नहीं रखती कि अपनी मानसिक आकर्षण शक्ति से रावण की मानसिक और हार्दिक प्रतिमा को खींच लूं। वह मुझे भूल जाय और राम उसे मार गिरा दें। कल लड़ाई के समय मैं इसी का साधन करूंगी।

सीता के मन में इस विचार के आते ही उसका बांया अंग फड़कने लगा और वह समझ गई कि अब रावण के मरने का समय आ गया।

त्रिजटा सीता को बोध देकर अपने घर चली गई और वह अकेली रह गई।

अठारहवां समुल्लास
सातवें दिन का युद्ध

जामवंत के पटकने में इतना बल लगा था कि आधी रात तक रावण मूर्छित रहा। जब मूर्छा गई, उसने अपने आपको छपरखट में पड़ा पाया। निशाचरों पर क्रुद्ध हुआ 'क्यों मुझे रण भूमि से उठा लाये? चलो! अभी चल कर राम से लड़ूंगा। रात का समय निशिचर (रात की चर्या करने वालों) के लिये परम उपयोगी है।' मंत्रियों ने समझाया–'यह समय अच्छा नहीं है। तुम सुस्ता लो। नींद लेने से नया बल आयेगा।'

वह लेट रहा। प्रातःकाल, जाग आ गई। उठा और अस्त्र शस्त्र बदल कर फिर रण भूमि में जाने लगा। फिर कुसगुन हुए लेकिन वह अभय था, उसे मरने का किंचित मात्र डर नहीं था।

विपत आपति मेरे वीरो जो आये उसको आने दो।
लंका को ही जान अपनी उसे इस तन से जाने दो।
नहीं रण से फिरूंगा, पीठ दिखलाते लज्जा है।
डराये लाख कोई इस घड़ी उसको डराने दो।।
मरूंगा, मारूंगा, मरने की चिन्ता अब नहीं मुझको।
न मानूंगा किसी की बात तुम उनको मनाने दो।।
मेरा है नाम रावण वीर रस की प्रतिमा हूं मैं।
यह अवसर हाथ आया है वीर रस को कुछ चखने दो।।

कोई हो काल बन कर चाहे मेरे सामने आये।
उसे लड़ने के कौतुक को दिखाने दो दिखाने दो।।

योद्धा वीर रण–भूमि में आया। राम की सेना ने सुना। यह तो इसके भूके थे। उठे। पत्थर चट्टान और पहाड़ों की वर्षा होने लगी। पृथ्वी इनसे पट गई। बचे खुचे राक्षस कुचल गये। रावण पत्थरों की मार से बचता रहा और उसके बाणों के प्रहार से रीछ और बंदर घायल हो होकर मरने लगे। इनकी लाशों के एक जगह इकट्ठा होने से मुर्दों का टीला बन गया।

मरने वाले मर मिटे मरते गये खिपते हुये।
बोझ से बाणों के वह घायल हुये दबते गये।।

रावण ने सोचा–'यह लड़ाई ठीक नहीं है।' और बस कुछ देर के लिये अन्तर्ध्यान हो गया।

रणभूमि में उसी घड़ी विचित्र मानसिक रचना हो गई। सिंह, चीते, भेड़िये, चरख और कई प्रकार के भयानक जीव–जन्तु सामने आगये और बंदरों को पटक पटक कर मारने लगे और उनका गला दबा दबा कर लहू चूसने लगे। 'मारो कितने पत्थर मारते हो। राम बंदर और रीछों की सेना लेकर आये। रावण अनेक जीव–जन्तुओं को अपने मानसिक बल से उत्पन्न करके उनका सामना कर सकता है।' फाड़खाने वाले पशु दहाड़ने और चिंघाड़ने लगे। झपटे और कितने बंदरों को झपट कर कुचल कुचल का उन्हें खाने और चीखने लगे। इनका सामना रीछ और बंदर क्या कर सकते थे।

पृथ्वी इनके लहू से लाल होगयी। रक्त की बाढ़ रणभूमि में पोटने और इन्हे अपनी बारी पर डुबाने लगी। यह लड़ाई थी कि प्रलय का सामना था। कोई क्या कह सकता था! कितनी बैताल और पिशाच, डाकिनी, शाकिनी रूधिर पीने की इच्छा में त्रिशूल कृपाण और खड्क हाथों में लिए हुये इन पर झपटने लगे। इस भयानक दृश्य और अद्भुत युद्ध का सामना न करते हुये राम की सेना मूर्छित हो गई। लक्ष्मण इतने बली थे वह भी रण भूमि में गिर कर अचेत हो गये। यही दशा अंगद, सुग्रीव की भी हुई।

राम लंगूरों से घिरे हुए रावण की युद्ध लीला को देख रहे थे। यह जानते थे कि राक्षसी माया बहुत प्रबल है। यह मन माया का मानसिक युद्ध है। खिलाने का मन्तव्य यह था। धनुष बाण उठाया, लगे

बाणों की वर्षा करने! उनका ध्यान केवल रावण की तरफ था। इसके सिर और हाथ कट कट कर नये नये लग जाते थे।

विभीषण पास आए। 'प्रभो! उसके हृदय कमल के अनाहत चक्र में अमृत है और इसके नाभि कुण्ड के कमल में भी उसी अमृत की अधिकता है। बाण इन मर्म स्थानों में लगे तो वह मरेगा। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।'

राम मुस्कराए–'पहिले इस अधिकता के साथ शपाशप बाण मारे कि रावण संभल न सका। इसका चित्त इष्ट केन्द्र को छोड़ बैठा। राम ने उसे विस्मृत पाकर एक अग्नि बाण उसके हृदय को मारा जिसने अनाहत चक्र को बेधता हुआ नाभि चक्र के अमृत कुण्ड को सुखा दिया और दूसरे बाणों ने उसके सिर और भुजाओं को काट कर गिरा दिया। वह अचेत् होकर पृथ्वी पर तो गिरा लेकिन राम को लड़ाई के लिए ललकारता ही रहा। बंदर और रीछ उसकी लाश पर चढ़ बैठे। जब तड़पता हुआ तन ठंडा होने लगा उसका तेज मुंह से निकला और राम के मुंह में समा गया।

उसके मरते ही नभ मंडल में देवता स्तुति गाने और फूल बरसाने लगे।

जै परम दीन दयाल राम कृपाल सुख सागर महा।
जै प्रणत पाल, अमोघ बल, जै अतुल बल, जै जै सदा।।

उन्नीसवां समुल्लास
सियापा और राज तिलक

मन्दोदरी रावण का सिर और हाथ देखते ही व्याकुल हो गई। वह जानती थी कि इस युद्ध का क्या परिणाम होगा। राम विमुख का अंत ऐसा ही होता है जैसा रावण का हुआ। यह बहुत समझदार स्त्री थी। रावण अपने विजय विषय के नशे में रात दिन चूर रहता था। घर पर नहीं रहता था। मन्दोदरी चाहती थी कि वह कभी कभी इसके साथ भी रहे। वह इसकी नहीं सुनता था। मन्दोदरी ने पूछा तुम क्यों इतना दूर दूर रहते हो! रावण ने उत्तर दिया–'लड़ना भिड़ना विजय पराजय करते रहना मेरी प्रकृति है। मैं बैठे ठाले नहीं रह सकता। मुझ में रजोगुण शक्ति प्रधान है।'

मन्दोदरी ने कहा–'तब मुझसे लड़ा करो। देखूं, तुम मुझे जीत सकते हो या मैं तुम्हें हरा देती हूं।'

वह बोला–'बहुत अच्छा!'

मन्दोदरी ने चतुरंग का खेल बनाया जिसमें चार प्रकार की सेना रहती है। हाथी, घोड़े, ऊँट और प्यादे! और राजा दीवाना अलग अलग हैं। इसी चतुरंग खेल का पारसी भाव शतरंज है और मन्दोदरी के मस्तिष्क से निकला हुआ है। दोनों खेलते थे। कभी इसकी हार होती थी कभी मन्दोदरी की। कभी वह जीतता था कभी यह और उनका एक खेल (बाजी) महीनों तक चलती थी। दोनों दांव पेच और समझ बूझ में बराबर थे। रावण उसके इस खेल से बहुत प्रसन्न रहता था और उसे इस प्रकार अपने माया जाल में फंसा रहती थी जैसे रामायण का युद्ध राम रावण की लड़ाई और रामायण की कथा का छंद प्रबंध अद्वितीय है। जब से यह सृष्टि हुई उस समय से लेकर अब तक किसी चित्रकार लेखक ने ऐसी ग्रंथ रचना नहीं की वैसी ही मन्दोदरी का चतुरंग खेल भी अब तक अद्वितीय है। ऐसे खेल की रचना आज तक किसी से नहीं हुई। दोनों का जोड़ा बराबर का था।

पति के सिर और भुजाओं को कटा हुआ देखकर इसे जो दुख हुआ उसका वर्णन किसकी लेखनी या वाणी से हो सकता है।

दुख हुआ और दुख था यह अध्यात्मिक और मानसिक।
था यह आधिदैविक तो आधिभैतिक भी था अज्ञानतक।।
तीन तापों से दुखी होकर गई संग्राम में।
लाश को देखा पती के रो पड़ी कुहराम में।।
हाय रावण! क्या हुआ तुझको पड़ा मिट्टी में है।
तू तो जोधा वीर था, अब काल की भट्टी में है।
सबको जीता जप किया लेकिन न जीता आपको।
राम से होकर विमुख तूने बढ़ाया पाप को।।
राजसी वषत्ति तेरी, रावण! कहां अब सो गई।
मैं कहा करती थी प्यारे! तेरी बुद्धि खो गई।।
मेरे कहने को न माना, राम को नर जानकर।
तू न आया रास्ते में जान कर पहिचान कर।।
दे दे सीता को कहा, तूने न मानी मेरी बात।
काल के पंजे में फंस कर खेलता था दाव घात।।
मर गई संतान तेरी, मर गई और कट गई।
आज लंका उनके मुर्दा लाशों से है पट गई।।

राम से लड़कर मरा और जीते जी मारा मुझे।
मैं अधोगति में पड़ी हूं देखले प्यारे मुझे।।
क्या हुई चतुरंग सेना? है कहां अब धन तेरा।
धन को क्या रोऊँ! बता दे हैं कहां तन मन तेरा।।
मिट्टी का पुतला बना था मिट्टी में आकर मिला।
हाय रावण! क्या किया और तुझको यह क्या हो गया।।

मन्दोदरी का विलाप सुनकर रीछ और बंदरों के कलेजे उछलने लगे। राम नर नहीं थे नारायण थे। नर लीला कर रहे थे। इनका हृदय भी फटने लगा। विभीषण को बुलाकर कहा–'रावण की लाश जल्द उठाकर ले जाओ। शास्त्रों की विधि से उसका क्रिया कर्म कराओ। यह संसार काल की लीला है। जीना मरना प्राकृतिक है। इसे कौन रोक सकता है। सृष्टि, स्थिति और प्रलय के प्रवाह का ऐसा ही प्रबंध चलता है।'

और साथ ही हनुमान, सुग्रीव और अंगदादि को आज्ञा दी–'लक्ष्मण के साथ जाओ। वह विभीषण का राजतिलक करेंगे। मैं चौदह वर्ष तक नगर में न जाऊँगा। पिता की आज्ञा ऐसी ही है। प्रकृति पुरूष के लिये है। राज खाली नहीं रह सकता।'

विभीषण ओर रीछ बंदरों ने मिल मिलाकर सब काम राम की आज्ञानुसार कर दिया। विभीषण लंका का राजा हुआ और मन्दोदरी उसकी रानी हो गई। लंका में कोई राजा हो, रानी मन्दोदरी ही रहेगी! किष्कंधा के सिहांसन पर कोई बैठे उसकी अद्धागिनी तारा ही बनेगी। यह कहावत हम हिन्दूओं में सहस्त्रों वर्षों से चली आती है। मन्दोदरी और तारा पंच कन्याओं में से हैं। इनको कोई बुरा नहीं कहता। यह पवित्र स्त्रियां समझी जाती है।

नोट– पंच कन्यायों में कुन्ती, द्रोपदी, मन्दोदरी, तारा और अहिल्या की गिनती है। सीता का नाम तो लोग यों ही पंच कन्याओं में अपनी भूल से मिलाते हैं। वह स्त्री जाति का निर्दोष आदर्श है। पंच कन्याओं के विषय में श्लोक है–

अहिल्या द्रोपदी तारा कुन्ती मन्दोदरी तथा।
पंचकन्या पठे नीतिम्, महा पातक नाशनम्।।

तारा दो हैं। एक सुग्रीव की स्त्री दूसरी वृहस्पति की! कौन जाने इन दोनों में से कौन तारा पंच कन्याओं में है।

महाभारत में स्त्री जाति का प्रशंसनीय भूषण गान्धारी है। रामायण में स्त्री जाति का अलौकिक प्रतिष्ठित आदर्श सीता है। आज तो मैं तुम्हें सुमेरू पर्वत के शिखर पर बैठा कर राम और सीता के गुणानुवाद का गीत गद्य और पद्य के रूप में सुना रहा हूं। अवसर पाने पर महाभारत का रहस्य भी सुनाऊँगा।

विभिषण ने लंका के राजा अधिकारियों को वस्त्राभूषण दिये और रीछ बंदर तिलक का उत्सव मनाकर विभीषण के साथ राम के पास आये और नमस्कार किया।

यह संसार है। संसार प्रवाह, धार, लहर और बाढ़ को कहते हैं। यहां क्षण क्षण परिवर्तन होता रहता है। जो आज है कल न रहेगा। जो कल है परसों न रहेगा। यहां किसी बात का ठिकाना नहीं है।

कोई हंस रहा है कोई रो रहा है।
कोई अपने आपे को भी खो रहा है।
किसी का सयापा मचा देखते हो
कहीं ब्याह उत्सव रचा देखते हो।।
किसी का कोई साथ देता नहीं है।
कोई संग कुछ अपने लेता नहीं है।
कहां आज लंका कहां आज रावण।
रावण मरा उस जगह राजा विभीषण।।
सवा लाख पोते थे एक लाख बेटे।
सभी काल की आके शैया में लेटे।।
न लंका है वह अरू न रावण है राजा।
हुये काल माया के यह सब ही खाजा।।
किसे चाहते हो किसे मांगते हो।
रहा कौन भागो जो तुम भागते हो।।
गुरू को भजो उसके चरणों में गिरकर।
नहीं कोई दौलत है इसके बराबर।।

बीसवां समुल्लास
संक्षेप रहस्य दर्शन

रावण मरा, कुम्भकरण मरा। विभीषण को राजतिलक मिला। कौन मरा? कौन जिया? कौन क्या हुआ? यह सब राम की

लीला थी। सीता का बंधन कटा। वह कब बंधन में थी। यह सब रहस्य है।

रावण नाम है रज का। जिसके अहंकार, काम, क्रोध, लोभ, मोह पांच विकार हैं। लोहा लोहे से कटता है, विष का प्रभाव विष के सेवन करने से जाता है। आग का जला हुआ आग की सेक से शान्ति पाता है। औषधि संशोधन मात्र के लिये होती है।

कुम्भकरण नाम है तम का। जो अहंकार, तमाकार और मूढ़ाकार है।

विभीषण नाम है सत का जो सत्ता मात्र है। इनके नामों पर विचार करो। नाम ही विचार के ताले की कुंजी है। फिर इनके रूप को देखो।

नाम और रूप ही को जगत कहते हैं।

नाम विचार है और रूप साक्षात्कार है। रूप देखा जाता है। यह देखने की वस्तु है। स्थूल है। नाम स्मृति और विवेक का उत्तेजक है जो सूक्ष्म है।

बिना नाम के रूप नहीं और बिना रूप के नाम नहीं। दोनों साथ साथ चलते हैं। दोनों से काम निकलता है।

नाम के सुनने से सबको रूप का आता है ध्यान।
रूप को देखा तो पाया सत्य का ठौर और ठिकान।।
नम और रूप में और रूप मे अनुमान है और ज्ञान है।
ज्ञान और अनुमान ही से सद्गति निर्वाण है।।
सुन लिया और सुनके देखा, चित को तब निश्चय हुआ।
बिन सुने देखे किसी का कब कभी संशय गया।।
नाम पाया तूने गुरू से नाम से अब देख रूप।
तब समझ में आयेगा कुछ रूप नाम का भेद अनूप।।
जब नहीं देखा सुना फिर मानता है किसको तू।
जब नहीं देखा सुना फिर जानता है किसको तू।।
देखने ही की है भक्ती देखना है मूल सार।
नाम के सुनने से केवल जागता है सत विचार।।
पोथयों को पढ़ के भूला तत्व को पाता नहीं।
ऐसा प्राणी भ्रम से सत पंथ में आता नहीं।।
क्या सगुण है क्या अगुण है गुण में गुण को जानले।
भक्ति होती है सगुण की मेरी सुनकर मान ले।।

जो नहीं समझा सगुण को शब्द का झगड़ा मचा।
फंस रहा बाणी के बन में बानी का रगड़ा मचा।।
किसने भक्ति की अगुण की कैसी वह भक्ती हुई।
देखने सुनने से आई, गुण की तब शक्ती मिली।।
क्या अगुण का नाम है जब गुण नहीं फिर नाम क्या।
जब सगुण समझा नहीं, फिर पायेगा सतनाम क्या।।
युक्ती पर देता है युक्ती, युक्ती का परमाण है।
अपना कुछ अनुभव नहीं अपना न उसको ज्ञान है।
तत पद और त्वम पद में गुण है तत्व कहते हैं इसे
तत्व को ले अब समझ फिर न कुछ संशय रहे।।
तत्व में तत् त्वम है, त्वम गुण है गुण को अब समझ।
मुंह से क्या निर्गुण है कहता गुण सगुण को अब समझ।।
रगड़े झगड़े में पड़ा बातों में अटका भूल कर।
पढ़ के पोथी हो गया अभिमानी मन में फूल कर।।
है वही अभिमानी जड़ अज्ञान की और भ्रम की।
दूर जब अभिमान हो फिर सूझेगी कुछ मरम की।।
खोल कर कहता हूं बातें सुन हो जब अधिकार कुछ।
बातों के पकवान क्या खाता है गहले सार कुछ।।

न राम को जाना, न लक्ष्मण को पहिचाना। न भरत को माना, न शत्रुहन के अर्थ को छाना और चला रामायण पढ़ने को!

यों ही न रावण की समझ आई, न कुम्भकरण के सार की गम पाई। विभीषण क्या थे उसे भी नहीं जानता।

रामायण चित्र दिखाती है और चित्रकूट को दिखाई हुई वह त्रिकूट में लाती है, जिस पर लंका बसी हुई थी या बसी हुई है। इस चित्रशाला को देखकर विचार करता तो कुछ तो समझ में आता। दोनों दीन से गये पांड़े हलुआ मिला न मांड़े। वर्तमान लंका में त्रिकूट पहाड़ है या नहीं हम नहीं जानते। लंका जाते जाते रह गये नहीं जा सके। लेकिन रामायण में त्रिकूट (तीन चोटियों वाला) पर्वत है। योग की परिभाषा में इसका नाम त्रिकुटी है। सत, रज तम तीनों गुणों की यह कुटी कहलाती है। रामायण ने अलंकार रूपक में सत को विभीषण, तम को कुम्भकरण और रज को रावण ठहराया।

सत तो सत ही है, जो है, रहे और कल्प तक जिसका अभाव न हो वह सत है और इसी सत की छाया तम है जो सत के सहारे रहती है और इस सत से जो धार क्षण क्षण बहती और निकलती रहती है उसका नाम रज है।

सत (संस्कृत–सत) होना।

तम (संस्कृत–तम) झकोले खाना, झकझोला जाना।

रज (संस्कृत–रज) रंग देते रहना।

सत है, तम है और रज है। सत ऊपर है, तम नीचे है और रज बीच में है।

सिर है पेट है और हृदय है। सिर से धार हृदय से होती हुई निकलती पेट में जाती है। उसे हिलती डुलाती और झकोले देती रहती है। तुम डमरू हो। तुम्हारा शरीर शिव (काल) का डमरू है जिसे वह बजाते रहते हैं। एक सिरा सिर है दूसरा पेट है और गर्दन से लेकर हृदय तक वह सिलि है जहां और जिसे हाथ से पकड़ा जाता है।

धार आती है धार जाती है।
धार बहती हुई समाती है।।
सांस को देखो, आई और गई।
आके और जाके वह कहीं ठहरी।।
जागे तब सांस देह में आई।
सोऐ स्वप्न में वह जा लौटी।।
ठहरी जहां जाके वह सुषुप्ती है।
दो प्रगट तीसरी यह गुप्ती है।।
जागना, सोना, नींद में जाना।
तीन गुण हैं यह इनको पहिचाना।।
जागे जब ब्रह्म पुत्र कहलाये।
सोये तब दिव्य अवस्था में आये।।
नींद में लय हुये तो भूत हैं हम।
शिव के अवधूत गुप्त दूत हैं हम।।

विभीषण (संस्कृत 'वि' पहिले, 'भी' डरना, भय खाना) सीधा साधा राम का भक्त जो सत स्वरूप है।

रावण (संस्कृत 'रो' चिल्लाना, रोना, शोर मचाना) उत्पाती और दुखदाई यह रज स्वरूप है।

कुम्भकरण (संस्कृत 'कुम्भ' घड़ा, 'करण' कान) बड़ा कान वाला, बड़ा सुनने वाला, प्रभाव का लेने वाला, मूढ़–आलसी यह तम स्वरूप है।

इन तीन गुणों और उनके इन लंकावी और मायावी स्वरूपों पर विचार करो। तुम सहज में समझ जाओगे कि रामायण के चतुर चितेरे चित्रकार बाल्मीकि ने कैसे विचित्र चित्र खींच खींच कर तुमको दिखाये हैं। इस एलबम के चित्र कोश को विचार की दृष्टि से देखो और उस पर मनन करो।

मेघनाद (बादलों का घनघोर शब्द करने वाला) रजोगुणी रावण के सब से सुयोग्य पुत्र को रजोगुणी ने मारा जिनकी रजोगुणी माता सुमित्रा थी।

हनुमान (अहंकार) सुग्रीव (काम) अंगद (क्रोध) नल (लोभ) नील (मोह) ने अहंकारी, कामी, क्रोधी, लोभी, मोही राक्षसों को मारा जो महा रजोगुणी थे। रजोगुणी पुरूष, निज स्वामी अपनी ही रक्षा करने वाला, राक्षस कहलाता है।

अपनी ही रक्षा में रहे वह राक्षस हुआ।
अपना ही अर्थ साधे हो स्वार्थी बना।।
है कामी क्रोधी लोभी अहंकारी राक्षस।
इसमें नहीं विचार है क्या कीर्ति क्या यश।।
लोभी है काम लोभ के करता है हर घड़ी।
उसकी प्रकृति अपनी ही रक्षा की है बड़ी।।
निश्चर है चरता और चिरता है रात को।
भूल और भरम में डालता है पांच सात को।।
धोके की टट्टी को बनाता है वह अपनी आड़।
इस बल से करता रहता है रातों को मारधार।।

जामवन्त (जामुन के समान काला) तमोगुणी रीछ है। इसने उन रजोगुणी राक्षसों को मारा जिनमें तमोगुणी अंश की अधिकता थी।

राम सत है। आधार मात्र है। तम कुम्भकरण और रज रावण इनकी सेना से मरे और इन्होंने सत्याकार विभीषण को अभय करके लंका का राज दिया। जैसे परशुराम ने क्षेत्र (शरीर) के सब विकारी अंग वाले क्षत्रियों को अनेक बार नाश करके ब्राह्मडों को उनका राज दिया, जिन्हें राज का अधिकार नहीं था। वह रजोगुणी और राक्षसी वृत्ति वाले नहीं थे। वह बेबस ब्रह्म सत्ता के अधिकारी थे। इसलिये राजकाज को नहीं

संभाल सके। उस समय इसी लीला की आवश्यकता थी।

राम का ब्रह्म अवतार महा विचित्र और सोचने के योग्य है। मन के तीनों गुण (अंग) सत, रज, तम को साथ कर एकाग्र किया। सत् विभीषण, रज चंचल बंदर, तम रीछ की त्रिगुणात्मक सेना इकट्ठी करके लंका को विजय किया। कौन मरा और कौन जिया इस पर विचार करना तुम्हारा काम है। जो मरे राम में समाये क्योंकि उन्हीं के अंश थे। जो जिये उनके साथ रहे।

यह लीला थी और खेल लीला थी सारी।
अनुपम, अनोखी, निराली, नियारी।।
पढ़ो पढ़ने वालो सुनो सुनने वालो।
विचारो, गुनो, सोचो कुछ गुनने वालो।।
यह है सार का सार मैंने बताया।
चरित राम का तुम को अद्भुत गुनाया।।
यह है तत्व, तत् राम और त्व है ध्यानी।
यही लक्ष और वाच की है निशानी।।
है 'तत्' त्वा में सब तत्व हो तत्व वेत्ता।
न पड़ भ्रम में काल धोखा है देता।।

धाम की गतिविधि

प्रेमी पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस बार परम संत हुजूर पुष्कर दयाल जी महाराज ने नव वर्ष के आगमन के उपलक्ष्य में धाम पर एक सत्संग का आयोजन करने की दया फरमाई। इस सत्संग का लाभ उठाने के लिए दूर–दूर से सत्संगी 31 दिसंबर की शाम को ही बहुत संख्या में एकत्रित हो गये थे। इसलिए 31 दिसंबर की शाम को एक बड़ा सत्संग का आयोजन हो गया। उसके बाद ग्वालियर और मुरैना से आये सत्संगियों ने संगीत का प्रोग्राम किया जो रात्री 12..30 तक चला। तदुपरांत हुजूर महाराज ने सबको नये वर्ष की शुभकामनाएं दी और शुभ आशीष देकर संगत को खूब फैजयाब किया। 1 जनवरी 2014 को प्रातः एक शानदार सत्संग हुआ जिसमें स्थानीय लोगों ने बहुत संख्या में भाग लिया। 26 जनवरी को हुजूर महाराज ने अपनी कोठी

शेष पृष्ठ 24 पर.....

सत्संग परम संत परम दयाल पं0 फकीर चन्द जी महाराज

सार का सार

प्रथम वचन

(हनमकुण्डा 9.2.62)

आज वसंत का दिन है। इस दिन सत्पुरूष राधास्वामी दयाल ने सत्संग का सिलसिला जारी किया था। मैं ब्राह्मण वंश में पैदा हुआ था, इसलिये हिन्दू धर्म और हिन्दु शास्त्रों के संस्कार बचपन से थे। उस परम तत्व, आधार, राम या मालिक के मिलने और आवागमन से बचने की इच्छा थी। मेरी इच्छा या मौज मुझे दातादयाल महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज के चरणों में ले गई, जिनको मैं अपने विश्वासनुसार राम या मालिक का अवतार मानता था। मैं पहिली बार 1905 ई0 में उनके चरणों में गया था। उन्होंने मुझे राधास्वामी मत की शिक्षा दी और "सार वचन पद्य" (स्वामी जी की वाणी) पढ़ने को दी। वहां माया संवाद में स्वामी जी ने तमाम मतों को काल मत कहा है। इसी वाणी का एक भाग 'हिदायतनामा' है। इसमें योग की श्रेणियों का हाल है। उसमें यह भी वर्णन है कि संत ईश्वर परमेश्वर के कर्त्ता होते हैं। उस समय मैंने यह प्रण किया था कि मैं इस तथ्य या सच्चाई का अनुभव करूंगा और जो अनुभव होगा वह सर्वसाधारण को बता जाऊँगा। इसलिए यह जो मैं सत्संग का काम करता हूं यह किसी पर अहसान नहीं है किन्तु जैसी भावना थी या जैसा संकल्प किया था वह सामने आ रहा है।

आज इस बसंत के दिन मैं इस शिक्षा का वर्णन निज अनुभव के आधार पर करना चाहता हूं कि जो मैंने समझा है या जिस निष्कर्ष पर मैं पंहुचा हूं।

दातादयाल कहा करते थे कि जिस वस्तु को देखो ध्यान से देखो, पूरी तरह से देखो। मेरी स्त्री बीमार है। ख्याल आता है कि क्यों बीमार है? मैं प्रायः उसके लिए दवा को डा0 के पास जाता हूं। उसके पास एक साल या छः माह के बच्चे आते हैं। कोई कुछ बीमार है कोई कुछ। माना कि मेरी स्त्री ने बुरे कर्म किए होंगे जिससे वह रोगी है मगर छोटे बच्चों ने क्या बुरे कर्म किए हैं जो वे कष्ट उठाएं। उत्तर होता है

कि या तो उन बच्चों का प्रारब्ध कर्म है और यदि इन कर्मों को न मानें तो यह मानना पड़ेगा कि यह कर्त्ता पुरूष का खेल है। एक चीज माननी पड़ती है अर्थात् या तो कर्मों का फल है बनाने वाले का खेल है।

इस युग का प्रभाव ऐसा है कि मानव जीवन में क्रान्ति (Revolt) करता है। संतों ने भी क्रान्ति की। वे कहते हैं कि दुनिया का रचने वाला निर्दयी है। यह काल है। कबीर की बाणी में काल को कराल कहा गया है। मैं उस भगवान को मानने वाला था जिसने दुनियां बनाई है। मुझ पर उन महापुरूषों के वचनों का प्रभाव पड़ा। मैं विवश हुआ कि जहां तक इस रचना का संबंध है यह देखूं कि यदि इसके रचने वाला निर्दयी है तो कोई जगह है जहां निर्दयता नहीं है अर्थात् जहां दयालता हो, जहां सुख–दुख न हो। यही ख्याल दातादयाल न मुझे दिया था। वह कैसे दिया? चूंकि मैं दुखों से बचना चाहता था उन्होंने सन् 1921 में यह शब्द मेरे वास्ते लिखाः–

काल चक्र

काल चक्र है सहज हिंडोला, झूला अचरज न्यारा।
सब कोई झूले झूला चढ़कर, काल झुलावन हारा।।
चन्द्र सूर दोऊ गगन में झूलें, झूलें नव लख तारे।
जीव जन्तु पृथ्वी में झूलें, नर पशु सकल विचारे।।
राजा झूला रानी झूली, और प्रजा समुराई।
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर झूले, झूली सब दुनियाई।।
लक्ष्मी झूली दुर्गा झूली, गायत्री महारानी।
देवा झूले देवी झूलीं, नभ थल अगिनी पानी।।
काल भी झूला अपने झूला, सृष्टि प्रलय कर प्यारे।
वह भी बचा न चक्र से अपने, झूला झूले सारे।।
चढ़ी पेंग जब ऊँचे आये, उतरी नीचे ठहरे।
कभी मिले तो जमघट देखी, बिछुड़ के होगये न्यारे।।
एक दशा में नित जो बरते, कोई नजर न आया।
पीर पैगम्बर कुतुब औलिया, ऋषि मुनि बच नहीं पाया।।
पानी भया भाप की सुरत, धाया गिरि कैलासा।
बरफ बना धारा बह निकली, नीचे किया निवासा।।
नीचे भी रहने नहिं पाया, फिर ऊँचे की आशा।

हम तो देखें खुली दृष्टि से,अचरज अजब तमाशा।।
लकड़ी जलकर कोयला होगई, कोयला राख और माटी।
माटी माटी में नहिं ठहरी, बनी काठ और लाठी।।
विष्टा अन्न अन्न भया विष्टा, सोई सब कोई खावे।
यह प्रपंच है अद्‌भुत न्यारा, कोई बिरला लख पावे।।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति लीला, कभी ऐसी कभी वैसी।
यह सब काल बली की माया, कभी जैसी कभी तैसी।।
पंडित कभी अनाड़ी होते, कभी अज्ञानी ज्ञानी।
कभी जड़ मिल जुल चेतन ठहरे, कभी चेतन जड़ जानी।।
समुझत बने कथन नहिं आवे, मन बानी अलसानी।
कोई कैसे समझावे किसको, समझे कोई गुरू ज्ञानी।।
एक दशा में कोई न वरते, कभी बैठा कभी दौड़ा।
कभी थका कभी सोया लेटा, काल चक्र अति चौड़ा।।
झूले की है विचित्र कहानी, कथा वार्ता न्यारी।
नर को हम समझावन आये, सुने न बात हमारी।।
दुख सुख सुख दुख द्वंद पसारा, द्वंद से प्यार बढ़ाया।
द्वंद भाव से जगत रचाया, द्वंद के फांस फंसाया।।
मन बुद्धि और चित्त हंकारा, सो झूले की रसरी।
दोलड़ त्रयलड़ चौलड़ बन आई, जीव निबल को जकड़ी।।
जकड़े माया के फंदे में, रोवे और चिल्लाये।
शोर मचावे बहु चिल्लाये, छूटन विधि नहिं पावे।।
तब दयाल को दाया लागी, संत रूप धर आया।
राधास्वामी अचल मुकामी, 'सालिगराम' कहाया।।
नर शरीर में प्रगटा आकर, जीवन बहुत चिताया।
जो कोई जीव शरण में आया, अपना कर अपनाया।।
सुन फकीर यह गुरू उपदेशा, मैं भी तुझे सुनाऊँ।
काल हिंडोले से तू बाचे, विधि विचित्र समझाऊँ।।
कर सत्संग विवेक से गुरू का, गुरू दयाल हितकारी।
साधु बनकर साध ले युक्ति, जा झूले के पारी।।
नर शरीर सुर दुर्लभ पाया, सत संगत में आया।
तेरा दांव पड़ा है पूरा, सोच समझ तज माया।।
अब की चूके मौज न ऐसी, त्याग काल की आसा।

आज का साधन आज ही कर ले, कल को होगा उदासा।।
बार बार नहिं अवसर प्रानी, काल महा दुखदाई।
जो कोई करे काल की आसा, सो पीछे पछताई।।
राधास्वामी दया के सागर, तेरे कारन आये।
सीस चरन में उनके झुकाकर, अपना काज बनाये।।
राधास्वामी राधास्वामी राधास्वामी गाना।
मन वच कर्म से भक्ति करना, झूले बाहर आना।।

यह शब्द आपने सुन लिया। मैं बड़ा अज्ञानी था। बचपन की शादी के कारण मन अधिक चंचल था इसलिए उस उपदेश को जो दाता दयाल ने मुझे दिया था समझ नहीं सकता था। दाता दयाल ने यह देखकर कि यह आदमी सच्चा है मगर मन की चंचलता से बात इसकी समझ में नहीं आती, मुझे आचार्य पदवी दी। सन् 1919 ई0 में पांच पैसे और नारियल रखकर मुझे नमस्कार किया। तुम यह समझते होगे कि मैं कोई महापुरूष था, नहीं यह बात नहीं थी, उन्होंने मेरे सुधार को यह खेल खेला था। उन्होंने यह कहा था कि फकीर यह न समझना कि तुम किसी का बेड़ा पार करोगे मगर राधास्वामी धाम में वासा दिलाने वाला सत्गुरू सत्संगियों के रूप में तुमको प्राप्त होगा। मैंने आचार्य पदवी ग्रहण की। मैं इस काल और माया के चक्र से निकल नहीं सकता था, इसलिए मुझे यह कार्य दिया गया।

काल और माया

मैं बताना चाहता हूं कि माया नाम है ख्याल, भाव व विचार का, चाहे वह भाव विचार धार्मिक हों, चाहे भक्ति के, चाहे भले हों या बुरे। हमारे अंदर जितने भाव, विचार और आशाएं हैं चाहे दुनियां की चाहे प्रेम या भक्ति की अथवा योग की, सब माया के अंतर्गत हैं। दाता दयाल ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की हैः– मा–मापना, या–यंत्र अर्थात् नापने की वस्तु। उसका नाम माया है। यह हमारी बुद्धि है। वह अच्छी भी है और बुरी भी है।

मैं दाता दयाल से प्रेम किया करता था। उनकी आरती करता, फूल चढ़ाता, रूपया देता, सिंहासन बनाता आदि आदि। यह सब कर्म माया का था। मैं उससे निकल न सका। मैं दाता दयाल के रूप को सब कुछ समझ कर उनसे प्रेम करता था। इसलिए इस माया के चक्र से निकालने को यह काम सत्संग का मुझे दिया। मैं कैसे निकला।

निकालने वाले आप सत्संगी लोग हैं। मेरे पास सैकड़ों सत्संगियों के पत्र आते रहते हैं। वह कहते हैं कि आप हमारे अंतर में प्रगट होते हैं। आपका रूप प्रकाश में हममें प्रगट होता है। किसी को दवा बता देता है, किसी को अभ्यास में चढ़ाई करा देता है आदि आदि। हाल की एक घटना सुनाता हूं–

मध्य भारत में एक गनेशचन्द्र नामी सत्संगी है। एक मास हुआ उसने लिखा कि आपकी आज्ञा अनुसार मैंने कुछ दिन मौन रखा। जब मैं रात को 10 बजे अभ्यास में बैठा तो देखा कि प्रकाश का एक पहाड़ है। उसकी दृष्टि से एक मील है। उसमें से किरणें निकल रहीं हैं। उसमें से देवताओं का दल निकल रहा है। वह आगे लिखता है कि मैं (फकीर) उसे चीरता हुआ आया। उसे पकड़ कर ले गया। जब होश आया तो उसने यह मुझको लिखा। अब मैं तो वहां गया नहीं। फिर कौन गया? जिस प्रकाश का विचार, संस्कार, भाव या आशा मनुष्य के अन्तर में होती है और जब वह साधन में बैठता है तो वही भाव और संस्कार प्रगट होते हैं। जब मैं जिन्दा उसके अन्दर नहीं गया तो कैसे कहूं कि देवता उसके अन्दर आये। मैं राधास्वामी मत वालों को सच्चा ज्ञान देने आया हूं। क्यों देता हूं? इसलिए कि दाता दयाल ने एक शब्द मेरे नाम लिखकर आज्ञा दी थी–

देह के बन्ध फकीर जो आवे, बन्ध निरबन्धन सोई।
बंध कर बंधुवे जीव छुड़ावे, समझे यह गति कोई।।
तू तो आया नर देही में, धर फकीर का भेषा।
दुखी जीव को अंग लगाकर, ले जा गुरू के देशा।।
तीन ताप से जीव दुखी है, निबल अबल अज्ञानी।
तेरा काम दया का भाई, नाम दान दे दानी।।
नाम फकीर धराया तूने, काम फकीर का कर ले।
गुरू की दया साथ ले अपने, भक्ति की झोली भरले।।
तू इराक से अबके आया, सत संगत के कारण।
ले प्रसाद यह सत संगत का, होजा भव निधि तारण।।

मैं इसको नहीं समझ सका। मेरे उद्धार के लिए यह सत्संग का काम दिया गया था। उस ऋण को उतारने के लिए मैं सिर खपाता हूं। मैं वह रहस्य बताने आया हूं कि लोगों के भ्रम मिट जांय। चूंकि मैं भ्रम में फंसा हुआ था अतः दाता दयाल जी मुझको उस भ्रम से निकालने को

अनेक प्रकार से चेताया करते थे। इनका एक शब्द भ्रम के विषय में मेरे नाम है। सुनो–

क्यों भरमा फकीर! क्यों भरमा फकीर! काहे दीवाना हो गया।
गुरू चरण गहा, गुरू चरण गहा, ले ठौर ठिकाना हो गया।।
नहिं होय अकाज, नहिं होय अकाज, जमफंद कटाना हो गया।
क्यों विकल रहे, क्यों विकल रहे, अब तो मस्ताना हो गया।।
तन विकल हुआ, तन विकल हुआ, गंगा स्नाना हो गया।
सत्संग में आ, सत्संग में आ, जप तप और ध्याना हो गया।।
क्या नेम धरम, क्या नेम धरम, जब सत का ज्ञाना हो गया।
नित–नित का कर्म, नित–नित का कर्म, राधास्वामी गुनगाना हो गया।।

(सेठ चन्द्रकान्ता उर्फ धर्मदास की ओर संकेत करते हुए कहा–धर्मदास जैसे दीवानो! भेद को समझो, शब्द को पढ़ो, वहां क्या लिखा है।)

जब यह बात मेरी समझ में नहीं आई थी तब शब्द मेरे नाम लिखा था। तब मैं क्या किया करता था? दाता से प्रेम करता, आरती उतारता, सिंहासन बनाता आदि आदि। उस समय दाता दयाल इशारा करते कि क्यों दीवाना हो गया है, मगर मेरी दीवानगी जाती नहीं थी। कुछ अज्ञान था और कुछ बाणियों के जाल का प्रभाव था। मगर सत्संगियों के अनुभवों ने मेरे इस अज्ञान को दूर किया। कहा है–

गुरू बतावे साध को, साध कहे गुरू पूज।
अर्श पर्श के मेल से, बूझी बूझ अबूझ।।
शिष्य नवे है गुरू को, यह जाने सब कोय।
गुरू नवे जब शिष्य को, बिरला जाने सोय।।

मैं आज से नहीं सन् 1919 ई0 से इस भेद या रहस्य को जानता हूं। मैं दातादयाल जी की बड़ी भारी मानसिक भक्ति करता था। दाता का रूप बनाता, मुकुट बनाता, माला पहिनाता आदि आदि मगर वह क्या निकला? माया! यह मन के ही विचार थे। मैं माया के जाल में फंसा हुआ था। स्वामी जी ने भी कहा है–

भक्त उपासक योगी ज्ञानी, इन सब चक्कर खाया।

मैं भी इसी तरह चक्कर खाता रहा मगर अब मैं इससे निकल गया हूं। अब मैं क्या करता हूं? मैं अब मन के चक्र से ऊपर रहता हूं। वह मन का चक्र था रूप, रंग और रेखा। जहां तक इनका संबंध है उनके साथ उनको सत मानकर अपनी तवज्जह (attention) को जोड़ना,

साथ लगे रहना, उनमें आनन्द लेना, यह सब काल और माया का चक्र है।

तुम पूछोगे फिर मैं कहां रहता हूं। अब मेरा आपा (सेल्फ) निजस्वरूप के साथ रहता है। राधास्वामी दयाल मेरा आपा है।

यह माया कठिन जाल है। इस चक्र से निकलने की अधिकारी पदार्थों से आसक्ति रखने वाली दुनियां नहीं है। इसका अधिकार उनको है जो अशांत और दुखी हैं या जो आवागमन और कायल माया के चक्र से बचना चाहते हैं।

जब तवज्जह (सुरत) दूसरे पदार्थों के साथ लगी है तो वह काल माया के चक्र से न निकल सकेगी। अभ्यास में मन संकल्प उठाता रहता है। उस समय जो रूप बनते हैं हम उनसे आसक्ति करते हैं। अनेक रूप बनाते हैं–गुरू का, राम का, कृष्ण का, नानक का आदि आदि। यों समझो कि जिस जिस से संबंध जोड़ रखा है, उसी भाव के अंतर्गत रूप बनते रहते हैं। वह रूप बनाता है मन। हम मन से रूप बनाकर आप फंसे रहते हैं। चूंकि हमको सार ज्ञान की प्राप्ति नहीं है इससे उसे भिन्न या दूसरा समझते हैं। फिर आवागमन से कैसे बचेंगे।

अतः राधास्वामी दयाल, कबीर तथा ऋषियों की शिक्षा यह है कि अपने 'आपा' (सेल्फ) को अपने निजस्वरूप से लगाना और कल्पनाओं से जो रूप आप बनाते हैं उनसे अलग होना है वर्ना बचाव की कोई सूरत नहीं है। यह 84 का चक्र है।

इसलिये मैं राधास्वामी दयाल या संत मत की इज्जत करता हूं क्योंकि इनकी कृपा से काल माया के चक्र से निकल गया। अभी इस चोले में हूं। क्यों हूं? जगत कल्याण के काम करने के लिये।

मैं इस काल माया के चक्र से कैसे निकला? यह कि मुझे ज्ञान हो गया कि असलियत क्या है। जिन लोगों ने मुझ पर विश्वास किया अथवा जिन्होंने मुझे गुरू माना, उनके अनुभवों से मेरे अज्ञान का पर्दा हट गया। आज मैं दाता दयाल के रूप में आपके दर्शन करके अपने को कृतार्थ कर रहा हूं। महात्माओं ने सच्चाई को इन शब्दों में नहीं खोला जिस तरह कि मैंने खोला है।

मैंने इस रहस्य या भेद को क्यों खोला? क्योंकि मैं मूर्ख था, रहस्य समझ में नहीं आता था। समझता था शायद दूसरे भी मेरी तरह ऐसे ही होंगे। दाता दयाल ने इसी बात को समझाने के लिए अपने अंतिम समय में एक बार सत्संग में कहा कि (यहां के सत्संगियो में)

बेवकूफ चूनो। उसमें सबसे पहला नाम नन्दू भाई जी का था। ऐसा उन्होंने क्यों कहा? क्योंकि बेवकूफ उसे कहते हैं जिसको समझ न हो, ज्ञान न हो। मनुष्य अपनी मुक्ति दिलाने वाला किसी दूसरे को समझता है। वास्तव में मुक्ति दाता है समझ या ज्ञान।

आज बसंत का दिन है जिस दिन स्वामी जी ने सत्संग का क्रम चालू किया था। आज ही के दिन मैं कहता हूं कि राधास्वामी मत को भावी संतान याद करेगी। यही मत है जो आज के समय में मुक्ति दिला सकता है।

मैं राधास्वामी मत को इस कारण से सच्चा मानता हूं कि वह केवल पूर्ण पुरूष की भक्ति बताता है। वह भक्ति क्या है? सत्संग में बैठकर उस की बात को ध्यान से सुनना है। यह ही भक्ति है। मत्थे टेकना, फूल चढ़ाना, भेंट देना आदि यह बच्चों जैसे अज्ञानियों का काम है, मगर है भी आवश्यक। यह हमारी रीति है, प्रथा है। इसलिए आज बसंत के दिन मैं सत्पुरूष राधास्वामी दयाल की वंदना करता हूं।

वन्दना का शब्द और उसकी व्याख्या

करूं बन्दगी राधास्वामी आगे।
जिन परताप जीव बहु जागे।।

यह गुरू की प्रार्थना है। बार–बार वन्दना करना वाह्य पूर्ण पुरूष की वन्दना करना है। क्यों? क्योंकि उसके प्रताप से जीव जाग्रत हुए। उनके अज्ञान और भ्रम दूर करके होश में लाया गया।

मेरे सत्संग में लोगों के दिमाग में जाग्रति होती है। दाता दयाल ने मुझे जाग्रति दी। मैं उससे सुख दुख, जनम जोड़ के भय से बच गया। मैं दुनिया के दुखों से दुखी होता था। दुनियां की आशाओं में रोता था। अब मैं उनसे परे हो गया। दुनियां के लोग मेरे पास आते हैं। कोई कहता है मेरे बच्चा नहीं है। कोई कहता है पैसा नहीं है। मैं कर्म–भोग वश चुप रहता हूं। यहां जो मिलता है तुम्हारे प्रारब्ध कर्म के अनुसार मिलता है। जो कुछ होना होता है उसका अक्स मेरे दिमाग पर पड़ता है क्योंकि मेरा मस्तिष्क शुद्ध है। इसलिए जो बात मेरी जुबान से निकल जाती है वह ठीक हो जाती है। मगर मेरे बस में कोई बात नहीं। यदि होती तो मैं अपने यहां बजाय पोती के पोता बना लेता। जीव अज्ञानी है, मायाग्रस्त है। इस चक्र से निकलने का ख्याल नहीं। लोग मुझसे प्रसाद

ले जाते हैं, और निरोग हो जाते हैं। यदि मेरे प्रसाद में शक्ति होती तो मैं अपनी स्त्री को निरोग कर देता, मगर न कर सका।

राधास्वामी दयाल की शिक्षा ऊँची है। क्यों वन्दगी करते हैं? क्योंकि उनकी दया से हम में जाग्रति आ गई। रहस्य का पता लग गया। जिसकी खोज में मैं पूजा करता, विष्णु सहस्त्र नाम का पाठ करता, दाता दयाल की आरती उतारता, धन देता, अब पता चला–

वस्तु कहीं ढूंढे कहीं, केहि विधि आवे हाथ।
कहें कबीर तब पाईये, जब भेदी लीजे साथ।।
भेदी लीना साथ कर, दीनी वस्तु लखाय।
कोटि जनम का पंथ था, पल में दिया लखाय।।

मेरी इस बात के अधिकारी बहुत कम हैं। दुंनियां को इसकी आवययकता नहीं। यह उनको है जो दुनियां के आवागमन से बचना चाहते हैं। विशेष–विशेष व्यक्तियों को है। आम पब्लिक को नहीं। एक समय था जब मकान बंद करके राधास्वामी मत की शिक्षा दी जाती थी। किसी को भेद नहीं दिया जाता था। मैं आज बेवकूफ हूं जो हीरों को कुंजड़ों के आगे बखेर रहा हूं, मगर यह मेरा अहसान नहीं, कर्म भोग है।

गुरू का रूप और रहनी

वह गुरू जो तुमको शिक्ष देता है वह क्या है? आदि अनादि जुगादि। वह तत्व रूप है। उसकी रहनी क्या है? मुझे पता नहीं कि स्वामी जी कहां रहते थे अथवा कबीर कहां रहते थे? मेरे अनुभव ने मुझे जहां रहने, ठहरने को विवश किया वह कहता हूं। जब मैं अकेला होता हूं, दाता दयाल का बाहरी रूप मेरे सामने नहीं रहता क्योंकि जब मैं दूसरों के अंदर नहीं जाता तो फिर कौन दाता दयाल मेरे अंदर आयगा। (श्री आनन्द राव की ओर संकेत करके कहा कि मेरी बात को समझो। मैं तुमको संत बना देना चाहता हूं)।

सहसदल कंवल, त्रिकुटि, सुन्न, महासुन्न, भंवरगुफा सब माया की श्रेणियां थीं जहां मैं अभ्यास करता था। अपनी कल्पना से रूप बनाता था, चाहे किसी का रूप बना लूं। तो अपने थूके को कौन चाटे! फिर मैं कहां रहने को विवश हुआ? जहां न यादे खुदा, न यादे दयाल, न यादे ईश्वर। मैं पथ भ्रष्ट नहीं हूं। मैं वहां रहने को विवश हो गया। राधास्वामी दयाल की वाणी इसका प्रमाण है। लिखा है–

राम रहीम करीम न केशो।
कुछ नहिं कुछ नहिं था सो।।
स्मृति शास्त्र न गीता भागवत।
कथा पुरान न वक्त कीरत।।
सेवक सेव न दास न स्वामी।
नहिं सत नाम न नाम अनामी।।.....

मैं उस अवस्था में रहने को विवश होता हूं। आप लोगों ने मुझको माया देश से निकाला। मेरे साथ अनजाने में आपने गुरू का काम किया। मैं तुमको ज्ञान देना चाहता हूं कि तुम भी स्वतन्त्र हो जाओ अर्थात् काल और माया के चक्र से निकल जाओ।

जो व्यक्ति धन, धरती और स्त्री से संबंध रखता है या उनमें आसक्ति रखता है वह अधिकारी नहीं, वह काल और माया के चक्र से नहीं निकल सकता। इसका अर्थ यह नहीं कि तुम इनका त्याग कर दो। नहीं, इनके स्वरूप को समझो और इनमें आसक्ति न रखो। मैं सच्चाई वर्णन करता हूं। क्यों? इसलिए कि महात्मा कहलाने वाले लोग धर्म की आड़ में तुमको अपनी बार बरदारी का जानवर बनाकर लूट न लें। दूसरे यह कि जगत का कल्याण हो जाए।

जिसे गनेशचन्द्र का मैंने पहिले वर्णन किया है उससे मैं चाहता तो जितना चाहे धन ले लेता मगर मैं अपराधी होता। मैं इसी कारण डेरा धाम के जाल में नहीं फंसा। यह संसार लुट रहा है। इन धर्म के पुजारियों ने फंसाने का जाल बिछाया हुआ है। इस लूट के विषय पर दाता दयाल महर्षि शिव का एक शब्द है–

जगत में कैसी लूट पड़ी।। टेक।।
माता कहे पूत है मेरा, भाई भाई बनावे।
घर की तिरिया तन से लिपटी, पति कह रूदन मचावे।।
बहिन बीर कहे हंस मुसकावे, मुसके धन ले जावे।
पुत्र बहू कहे ससुर सयाना, झूठे भाव दिखावे।।
राजा कहे मेरी है परजा, करे कमाई उद्यम।
मक्खन काढ़ मुझे दे उत्तम, पिये छाछ नित मध्यम।।
पण्डित दान दक्षिणा मांगे, साधू भिक्षा धारी।
तीरथ मठ मूरत और मंदिर, लूटे लूट की बारी।।
मरते समय आग यह बोली, इसे जला खाजाऊँ।

मिट्टी कहे गाढ़ दे मुझमें, अपना बंस बनाऊँ।।
हवा सुखावे पानी घुलावे, सिमटावे आकाशा।
चकित हुआ यह देख के लीला, लूट का अजब तमाशा।।
मैं हूं कौन कौन है मेरा, इसकी समझ न पाई।
देख लूट का जग विस्तारा, लूट हुई दुखदाई।।
कभी कभी भूल भरम में फंसकर, आप लूट लुटवाऊँ।
लूट लूट के लुट गया सारा, लूट का मरम न पाऊँ।।
राधास्वामी की संगत पाई, समझ लूट की आई।
व्याकुल चित्त चरणों में आया, ली सतगुरू शरनाई।।

(इसके पश्चात् बन्दना की आगे की कड़ी पढ़ी गई)

बारम्बार करूं परनाम। सतगुरू पदम धाम सतनाम।।

जो संत निजस्वरूप (जात) में रहता है तो जो मनुष्य उसका दर्शन करेगा अथवा उसका ध्यान करेगा उसके गुण उसके अन्दर आ जाएंगे। पदम धाम क्या है? पदम एक फूल है जो पानी में रहता है मगर पानी चाहे कितना ही बढ़ जाए वह उसमें डूबता नहीं। सदा पानी से ऊपर रहता है। मैं अपने आप में रहता हूं। मुझे किसी से आसक्ति नहीं। इसलिए मैं पदम हो गया। यह पदम धाम का भाव है।

दो साल हुये मैं राधास्वामी धाम गया था। जब लौटने पर इलाहाबाद आया तो एक व्यक्ति हजारीसिंह (फौज का आदमी) मुझे वहां मिला। उसने बताया कि मैं अभ्यास के समय देखा करता हूं कि आप पदम के फूल पर बैठकर भाषण देते रहते हैं। वास्तव में वह वह पदम नहीं था। उसने पदम का शब्द सुना होगा। उसके ख्याल ने ही पदम का रूप बना दिया और उस पर मुझे बिठा दिया। सत्संगियों को मुद्दत हो गई मगर उन्हें रहस्य या भेद का पता नहीं लगा।

शेष अगले अंक में.....

पृष्ठ 13 से आगे.....

पर फरीदाबाद में एक सत्संग का आयोजन किया जिसमें 60–70 जिज्ञासुओं ने भाग लिया, इसमें ब्यास के सत्संगी अधिक मात्रा में थे। उन्हीं सत्संगियों के अनुरोध पर 2 फरवरी को सैक्टर 9 में और 9 व 16 फरवरी 2014 को सैक्टर 23 में सत्संग का आयोजन किया गया जिसमें अनेक जिज्ञासुओं को फैजयाब हुआ। यदि आप भी अपने स्थान पर हुजूर पुष्कर दयाल जी महाराज का सत्संग कराना चाहते हैं तो 09268105830 पर संपर्क करें।

परम संत हजूर मानव दयाल जी महाराज

राधास्वामी संग से तू काट दे जंजाल सब

गुरू की संगत से हटेगें, कर्म माया काल सब।
काट देगा तू सहज में,आप ही भव जाल सब।।
मुख्य साधन संग सत का, और शेष है समझ गौण।
इससे सूझेगी परमगति, सद्गति की चाल सब।।
जिसने पाया पाया सतसंग से, भक्ति ज्ञान गम।
तू उतारेगा विवेक और, तर्कना की खाल सब।।
कुछ दिनों संगत हो, कुछ दिन नाम, कुछ दिन मुक्त गति।
इसके पीछे पद है सत का, सत की रीति पाल सब।।
अर्थ–धर्म और काम मुक्ति की है कुंजी सत का संग।
राधास्वामी संग कर, दे काट अब जंजाल सब।।

राधास्वामी!

जो कोई सोचता है या अपने विचार प्रकट करता है, वह अपनी दृष्टि के मुताबिक करता है, अपने ख्याल के मुताबिक करता है। ख्याल संस्कारों से बनता है; लेकिन संत पहले से ही संस्कार लेकर आते हैं। हां, यह बात ठीक है कि वातावरण के संस्कारों का उन पर असर पड़ता है; लेकिन उनके जो जन्मजात संस्कार होते हैं, वे बहुत शक्तिशाली होते हैं। इसलिए जो कानून, जो नियम, जो व्यवहार आम आदमी का है, वह संत का व्यवहार नहीं है। चाहे उसका व्यवहार साधारण मनुष्य के व्यवहार की तरह लगता है और लगना भी चाहिए; क्योंकि यदि आप संत के अवतार को शुरू से ही अवतार समझ लेंगे, तो सभी लोग मोक्ष को पा जायेंगे और मोक्ष बहुत थोड़ी है।

किसी ने सवाल किया कि कया कारण है कि नजदीक रहने वाले लोग नहीं पहचानते? यह बात ठीक है कि नजदीक रहने वाले लोग नहीं पहचानते। हालांकि उन्हें पहचान कराने के लिए बड़ी कोशिश की जाती है, फिर भी लोग नहीं पहचानते। संत सबको ऊपर ले जाने की कोशिश करता है, अब कोई जाना ही न चाहे, तो संत भी क्या करे?

यदि सभी लोग समझ जायेंगे, तो बड़ी मुश्किल हो जायेगी। जो लोग मांस खाते है, उनका कहना है कि शाकाहारी लोग अधिक होने चाहिएं। अगर सभी मांसाहारी हो गये, तो मांस महंगा हो जायेगा। भक्ति भी

मांस है। संत जीवित का आहार करता है, जीते–जागते का आहार करता है। जीवित आहार किसका? आपकी आशाओं का। जिन चीजों को आप जीवन समझते हो, जिन आशाओं को, कामनाओं को पूरा करना चाहते हो, वह जीवन नहीं है, वह तो मृत्यु है। तो उस जीवनरूपी मृत्यु को हटाने के लिए संत आपको हिदायत करता है, लेकिन आप मानते नहीं हैं। जीवित आहार का मतलब है कि जिन चीजों को आप जीवन समझे बैठे हैं, उन चीजों को समाप्त करना।

'या निशा सर्वभूतानां, तस्यां जागर्ति संयमी'।

सतपुरूष भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है कि जो आम लोगों के लिए रात होती है, वह संत के लिए दिन होता है। जब सब सो रहे होते है, उस समय संत मालिक से तार लगा रहा होता है। उस समय जो आनंद होता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। वह सोते हुए भी जागता है। वास्तव में आप भी जागते हो, लेकिन आपको पता नहीं होता। जब आप गहरी नींद के अंदर सो जाते हो; उस वक्त आप शरीर के अंदर नहीं होते, उस वक्त आप मन के भी अंदर नहीं होते; क्योंकि यदि आप मन के अंदर होते, तो आपको अच्छे या बुरे स्वप्न दिखाई देते। लेकिन जब आप आत्मा के अंदर होते हैं, उस समय आनंद ही आनंद होता है, क्योंकि आत्मा प्रकाशमय है।

हमारा अन्तर्विज्ञान

जैसे हमारा स्थूल शरीर है, हमारा मन सूक्ष्म शरीर है और हमारी आत्मा कारण शरीर है, उसी तरह जगत् का स्थूल शरीर है जो दिखाई देता है–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। इस जगत का मन भी है। जब मालिक उस मन में होता है, तो मन के ख्याल से, सहस्त्रदल कमल से सारे जगत् की कलाओं को चलाता है। लेकिन मालिक जब अपने कारण शरीर में होता है, उस समय मालिक आनंद की अवस्था में होता है। परंतु उस आनंद की अवस्था में भी मालिक जो परमतत्व है, अनामी है, दयाल है, तीनों अवस्थाओं में बराबर रहता है। जाग्रत् में, स्वप्न में और सुषुप्ति में वह चैतन्य है। लेकिन मनुष्य चैतन्य नहीं रहता। आम आदमी जब जाग्रत में होता है, तो उसको स्वप्न भूल जाते हैं। जब वह स्वप्न में होता है तो उसे जाग्रत का ध्यान नहीं रहता। जब वह आत्मा के क्षेत्र में विचरता है, तो उस समय के अनुभव का उसे पता नहीं चलता, सिवाय आनंद के। उस वक्त सबकी आत्मा प्रकाशमय जगत् में होती है और उस समय प्रकाशमय गुरू से भी भेंट होती

है, बातें भी होती हैं, सब कुछ होता है, लेकिन वहां से उतर कर जब स्वप्न में आता है तो उसे जगत् की बात याद नहीं रहती, क्योंकि उस समय वह सो रहा होता है। लेकिन जिसको अनुभव है, वह उस वक्त भी जागता है। इसलिए वह उस जगत् की बातों को भी जानता है लेकिन यह अनुभव उसको उसके पिछले संस्कारों से और सदृगुरू की कृपा से होता है:–

'दस्तगीरे दो जहां और दो जहां का है वो पीर।'

सतसंग ही एक मात्र सुगम साधन

सतसंग का मतलब है आपको राधास्वामी हालत पर पहुंचा देना। इस अवस्था में पहुंचने के बाद में जाग्रत हो, स्वप्न हो, सुषुप्ति हो, तीनों के अंदर आपको ज्ञान होता है, अनुभव होता है और तीनों का आभास समाप्त होने के बाद आप चौथे पद पर पहुंच जाते हैं। राधास्वामी मत को, संतमत को क्यों सबसे ऊँचा माना जाता है? क्योंकि मालिक ने उसे ऊँचा बनाया है। हर एक युग के अदंर मनुष्य को उठाने के लिए, जगाने के लिए, वापस निजघर ले जाने के लिए अवतार हुए और वे अवतार उस युग के मुताबिक हुए। सतयुग में ध्यान पर जोर दिया गया; लेकिन ईशध्यान की विधि के लिए बहुत लम्बा समय चाहिए। कुछ लोग अब भी कहते हैं कि 2 घण्टे अभ्यास करो। वैसे अभ्यास की जरूरत नहीं, क्योंकि रास्ता सत्संग का है:–

'एक घड़ी आधी घड़ी, आधी की पुनि आध।
कबीर संगत साधु की कटें कोटि अपराध।।'

एक घडी, आधी घड़ी का कया मतलब है? 60 पल, या 30 पल, आधी से पुनः आध यानि 15 पल के अदंर भी कोटि–कोटि कर्म जो हमको अर्थात् हमारी सुरत को सबसे अलग किये हुए हैं हट सकते हैं; बशर्ते कि साधु अर्थात् सत्पुरूष की संगत मिल जाय। सतसंग का मतलब छैणे बजाना, जागरण करना, या गाना बजाना नहीं है। जो जागरण करते हैं, वे सो रहे होते हैं। लोग शराब पीकर गाते हैं और श्रोता कहते हैं कि देवी का जागरण हो रहा है। कितना अंधविश्वास है? जागरण तो वह है जब सब सो रहे हों, तब जागो और जब सब जागें, तब सो जाओ। आप सब होशियारपुर के रहने वाले हैं। कहते हैं कि होशियारपुर संतों की नगरी है, लेकिन संतों की नगरी में संतों के अलावा बाकी सब सोने वाले हैं। अर्थात् वे जिस मासद के लिए आये थे उसे भूले हुए हैं। असली जाग्रती तब आयेगी, जब आप अपने असली मकसद की तरफ चलेंगे।

गुरूमुख होकर मनमुख न बनो

गुरूमुख से मनमुख होना बहुत खतरनाक है। गुरू को पाना बड़े अच्छे कर्मों का फल है। गुरूमुख से मनमुख होने का मतलब है ऊँची सीढ़ी से नीचे गिरना। इससे बेहतर तो यह है कि आप गुरूमुख बनो ही मत, सतसंग में आओ ही नहीं, और अगर सतसंग में आ गये, तो फिर सीधे रास्ते पर चलोः–

आ गये सतसंग में, ओर संग सत का हो गया।
दुर्मति जाती रहीं और गुरू के मत का हो गया।।

गुरू के मत का हो जाने का मतलब है गुरू जैसा हो जाना। बिलकुल आसान तरीका है और लोग कठिन रास्ते से जाना चाहते हैं। गुरू के सामने सच बोलना बहुत आसान है। हां, दुनिया के सामने सच बोलना बहुत कठिन है, क्योंकि दुनिया में सभी झूठे हैं। जहां सभी झूठे हों, वहां सच्चे आदमी का काम नहीं, लेकिन गुरू के सामने सच बोलना बड़ा आसान है। यदि आपने सच बोल दिया, तो आपको कोई कठिनाई नहीं होगी। आप चाहे कितना भी बड़ा गुनाह कर दें, गुरू को कत्ल भी कर दें, तब भी गुरू आपको माफ कर देगा। यदि गुरू आपको माफ नहीं करे, तो वह सत्पुरूष नहीं। सद्गुरू तो वही है जो आपको यह भेद बता दे कि मैं कैसे मरूंगा।

अपराध स्वीकारने पर क्षमा का अधिकार मिलता है

अपराध क्या है? और वह कैसे कटते हैं? अपराध का मतलब है गलत काम। गलत काम को ही पाप कहते हैं। चोरी करना गलत काम है, लेकिन व्यापार के अंदर कौन चोरी नहीं करता? जितने बड़े व्यापी हैं, उतनी ही बड़ी चोरी करते हैं। टाटा, बिरला एक भी पैसा टैक्स नहीं देते और बेचारा मास्टर जो दो हजार रूपये कमाता है, उसे टैक्स देना पड़ता है। किसी को धोखा देना अपराध है; लेकिन किसी को कत्ल करना सबसे बड़ा पाप है, अपराध है, ब्रह्महत्या है। किसी भी जीव की हत्या ब्रह्महत्या है; क्योंकि ब्रह्म सभी जीवों के अंदर मौजूद है। भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा "अर्जुन! द्रोणाचार्य को कत्ल कर दे।" सत्पुरूष के साथ बैठने से गुरू को कत्ल करने का भी अपराध क्षमा हो जायेगा।

भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन को भेद बता दिया "तू अपने सभी अपराधों को, सभी धर्मों को छोड़कर केवल मुझ से प्यार कर, मेरी शरण में आजा।

मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूंगा।" लेकिन बात तो यह है कि अर्जुन ने तो सच बोल दिया था, "महाराज, मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं तो घबरा गया।" लेकिन यहां घबराने वाले सोचते हैं कि अगर मैं कह दूं कि मैं घबरा गया, तो मेरी क्या शान रही? अरे! गुरू के सामने तो घबराने की बात कह डालो। गुरू के सामने सच बोलने से अभयदान मिलता है। आप कहते हैं कि महाराज जी! आपने ऐसा कर दिया। वह तो आपको धोखा दे गया। अरे! अपने–आपको धोखा दे गया। मुझे क्या धोखा दे गया? आप कहते हैं कि महाराज जी! आप ऐडमिनिस्ट्रेशन (प्रशासन) नहीं कर सकते। लेकिन ऐडमिनिस्ट्रेशन जब हमारी रेडियेशन से होगी, तो ठीक होगी।

आन्तरिक प्रेरणा से कही गई पहली बात सत्य होती है

जो बात पहले मुंह से निकलती है, वह ठीक होती है। मगर दुनिया के लोग नहीं मानते। बिलारी के लोग बड़े भक्त हैं। अभी 1984 की बात है, बिलारी वाले कहने लगे "महाराज जी, स्कूल का उद्घाटन करना है।" मुझे साउथ कोरिया जाना था। मैंने कहा "कोरिया से वापिस आकर उद्घाटन करूंगा।" पर बिलारी वाले बड़ा जोर लगा रहे थे, "महाराज जी! जुलाई में ही उद्घाटन कर दीजिए।" मैंने कहा "अच्छा भाई! जुलाई में ही रख दो।"

हम लोग 21 जुलाई को मैटाडोर से सतसंग के लिए आदमपुर जा रहे थे। मैंने अग्रवाल साहिब से कहा था, "हम पौने तीन बजे आयेंगे।" अग्रवाल साहिब बोले, "महाराज जी ! पौने दो बजे!" मैं चुप हो गया। मेरी बात नहीं मानी। मैटाडोर में 8–10 आदमी थे। मैटाडोर का इतनी बुरी तरह से ऐक्सीडेण्ट हुआ कि वह तो चकनाचूर हो गई। मेरे भी काफी चोट आई। बात वही हुई कि बिलारी के स्कूल का उद्घाटन कोरिया से लौटने के बाद ही हुआ। अब मै। इसका कोई क्रेडिट नहीं ले रहा। यह कुदरत की बात है। हम ऐसी नहर हैं जिसमें लहर बहती रहती है। पहली बात जो मुंह से निकलती है, वह ठीक होती है।

'एक घड़ी आधी घड़ी, आधी से पुनि आध।
कबीर संगत साधु की कटें कोटि अपराध।।

बल्कि मैंने कहा कि एक वाक्यमात्र से भी सद्गुरू आपको ऐसी अवस्था में पहुंचा देता है कि फिर आपको किसी चीज की जरूरत नहीं रहती। मैं आपको बता रहा था कि संत अपने संस्कारों के साथ आता है। हरएक आदमी अपने–अपने संस्कारों के मुताबिक जैसी उसकी दृष्टि होती है, वैसी ही उसकी सृष्टि बन जाती है।

बस अन्त आपके कर्मो का

अब वसंत का मौसम है। फूल खिले हैं। वसंत का मौसम बहुत अच्छा होता है। वसंत के महीने में सर्दी भी कम और गर्मी भी कम। वसंत का अर्थ है–बस+अंत अर्थात् वसंत। सर्दी का अंत हो गया। इसी तरह तुम्हारे कर्मों का भी अंत होगा, जब तुम संत के पास जाओगे। वसंत का सुहावना दृश्य तुम बाहर देखते हो, लेकिन संत अंदर देखता है।

यह अच्छा है कि माघ महीने में वसंत आता है। सूर्य उत्तर की तरफ मकर रेखा पर जाता है। जैसे–जैसे सूर्य उत्तर की तरफ जाये, वैसे–बैसे ठण्ड कम होती जाती है ओर गर्मी आती जाती है। मकर–संक्राति का आपको मैंने संदेश दिया। आपको मैं सद्भावना देता हूं कि जिस मक़सद के लिए आपने जन्म लिया है, वह पूरा हो जाय।

आपका मकसद क्या है? परम अवस्था। तुम निजधाम से आये हो और वहीं जाना है और उसके लिए मैंने अपको बताया है कि हर युग के अन्दर अलग–अलग रीतियां थी।। सतयुग के लिए ध्यान था। उस समय लोगों की उम्र बहुत लम्बी होती थी। हजारों वर्ष तक ध्यान लगाने की क्षमता थी। परमतत्व अवतार ने उस युग के लिए ध्यान पर जोर दिया। त्रेतायुग में यज्ञ, मंत्र, कर्मकाण्ड था। गृहस्थ जीवन वेदों के मुताबिक चलता था। वेदमंत्रों के अनुसार चलने से इस लोक में आनंद भोगने के बाद परलोक का सुख मिलता था। भगवान् राम का अवतार गृहस्थ का अवतार था। परशुराम का ब्रह्मचर्य का अवतार था। हमारे ऋषियों ने हमारे जीवन को चार भागों में बांट दिया था। (1) ब्रह्मचर्य, (2) गृहस्थ, (3) वानप्रस्थ और (4) संन्यास। ब्रह्मचर्य जीवन में अध्ययन करना, दुनिया से अलग रहना, शरीर को पुष्ट करना और गुरू से ज्ञान प्राप्त करना। यह गुरू भक्ति है। संतमत कहता है–

एक जन्म गुरू भक्ति कर, जन्म दूसरे नाम।
जन्म तीसरे मुक्ति पद, चौथे में निजधाम।।

अब इसका मतलब यह नहीं कि चार जन्म लेने पड़ेंगे। संतमत कहता है कि इसी जन्म के अंदर, इसी समय जिस हालत में तुम हो यदि सद्गुरू, सतसंग ओर सतनाम को अपना लेते हो तो निजधाम जा सकते हो। एक जन्म का मतलब है कि कुछ समय के लिए। कुछ समय के लिए गुरू–भक्ति कर। पहले भक्ति जरूरी है–चाहे द्वैत की भक्ति है। भक्ति पर स्वामी जी महाराज ने बहुत लिखा है। गुरू की शारीरिक सेवा

हरएक के भाग्य में नहीं आती। वैसे तो सतसंग में आना भी शारीरिक सेवा है। सालिग्राम जी महाराज ने स्वामी महाराज की जितनी सेवा की, उसकी मिसाल नहीं। सालिग्राम जी महाराज कई मील दूर से स्वामी जी महाराज के नहाने को पानी लाते थे ओर उनको नहलाते थे, उनका खाना बनाते थे, ओर यही बात ब्रह्मचर्य आश्रम में थी।

शिष्य ऋषियों की सेवा करते थे। पूरा दिन सेवा में या गुरू की वाणी सुनने में व्यतीत होता था। शिष्य को अपने खाने–पीने का होश तक नहीं रहता था। एक ऋषिकुमार अपने गुरू से जब बारह साल तक व्याकरण पढ़ता रहा ओर 12 वर्ष बाद गुरू ने कहा "बस, अब तेरा काम हो गया। अब तुझे डिग्री मिल गई। अब तू घर जा सकता है।" शिष्य बड़ा खुश होकर ऋषि–पत्नी के पास खाना खाने के लिए गया तो कहने लगा कि माता जी आप आज शायद सब्जी में नमक डालना भूल गई हैं।" ऋषि –पत्नी ने कहा "बेटे! लगता है कि आज तेरी दीक्षा समाप्त हो गई है। तुझे डिग्री मिल गई है।" ऋषिकुमार ने कहा "माता जी खाने से मेरी डिग्री का क्या संबंध?" ऋषि–पत्नी ने कहा "बेटे! संबंध है, मैंने 12 साल तक कभी नमक नहीं डाला और तुझे पता ही नहीं चला कि भोजन में नमक नहीं है। आज तुझे होश आ गया कि नमक नहीं है।"

आपका यहा बैठना और गुरू के वचन सुनना और ऐसे सुनना कि बाहर का कुछ भी सुनाई न दे–यह भी गुरू–भक्ति है। क्योंकि भक्ति का मतलब है प्रेम और प्रेम के अंदर अपने आपको भूल जाना। जब आप अपने आपको भूल जाओगे, तो जिसकी भक्ति कर रहे हो, जिससे प्रेम कर रहे हो, वैसे ही हो जाओगे। यह भक्ति का आसान तरीका है। महाराज जी कहते थे कि "मैंने सोने के ताज, चांदी के हुक्के, चंदन का सिंहासन बनवाये। मैं उनके पीछे पागल सा भागता था। मैं उनका पेशाब भी पी जाता था।"

इसका मतलब यह नहीं कि आप भी ऐसा ही करो। यह तो एक मिसाल है। यदि गुरू ने एक क्षण भी तुम्हें अपने पास बैठा लिया तो इतना ही काफी है। दाता दयाल जी महाराज ने लिखा है कि भगवान् कृष्ण ने राधा के साथ बहुत जुल्म किया। राधा रात–दिन कृष्ण–2 करती रही और इतना याद किया कि वह स्वयं भी राधा को याद करते थे। भगवान् कृष्ण राधा को याद तो करते थे परंतु उसे अपने पास नहीं रखा। कहते हैं कि जब राधा मरी, तो भगवान् कृष्ण ने अपनी हथेली पर उसका दाह संस्कार किया।

कितनी धन्य थी राधा! आप घण्टों यहां बैठते हो और सोचते हो कि हमने महाराज जी पर बड़ी कृपा की।

जब तक महाराज जी यहां बैठे थे, आप उन्हें जान नहीं सके। उनके चले जाने के बाद अब समझते हो कि वे परमतत्व थे। हम भूले हुए थे। अरे! अब भी चेत जाओ। वह कहीं नहीं गये। यहीं पर हैं। प्रेम की बात है। अरे! प्रेम से तुम दुनिया को बदल सकते हो। अगर तुम प्रेम में सब कुछ भूल जाओ और केवल गुरू को याद रखो तो तुम्हारा जीवन बदल जायगा। लेकिन आप सब बातें याद रखते हो और गुरू को भूल जाते हो। यदि आप मुसीबत में भी गुरू को याद करोगे तो भी मुसीबतें टल जायंगी, परंतु तुम तो मुसीबत में भी गुरू को भूल कर मुसीबत को ही याद करते हो। जिनकी श्रद्धा है, विश्वास है, वे मुसीबत में गुरू को याद करते हैं और उनकी मदद भी होती है।

बटाला के एक सज्जन आये हुए हैं, उनके विश्वास ने उन्हें बन्दूक की गोलियों से बचा लिया। अब देखो! इनके अंदर कितना विश्वास है, कितना प्यार और श्रद्धा है। महाराज जी ने अभी सतसंग में कहा, "तुम्हें जो कुछ मिलता है, तुम्हारे विश्वास से मिलता है।" लेकिन विश्वास है क्या? पहले यह तो जानो। विश्वास है प्रेम। जितना प्रेम अधिक करोगे, तुम्हारा विश्वास भी उतना ही दृढ़ होगा। विश्वास जगत! को बदल सकता है। यह निशानी है, उसका एक नमूना है। श्रद्धा क्या है?

'भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम्।।'

भवानी शंकर आपके अंदर मौजूद हैं भवानी आपकी सुरत है और शंकर आपका शब्द है। उन भवानी और शंकर को नमस्कार है जो भवानी तो श्रद्धा है और शंकर विश्वास है। इन दोनों के बिना सिद्धपुरूष भी अपने अंदर मालिक का दर्शन नहीं कर सकते। भवानी–शंकर हर एक जगह मौजूद हैं। श्रद्धा क्या होती है? किसी के प्रति तीव्र खिचांव। आपकी इच्छा होती है कि गुरू से प्यार किया जाये। फिर नजदीक आते हो, तो विश्वास होता है। तुम्हारी श्रद्धा है, तुम्हारा विश्वास है यह तुम्हारा कर्म है, परंतु यह कर्म पिछले जन्म का कर्म नहीं है। अरे! पिछले कर्म तो तुम काट कर आये हो। श्रद्धा और विश्वास करना इस जन्म का कर्म है। हां गुरू के पास आप पिछले जन्म के कर्म के कारण आये हो।

लोग कहते हैं कि हमारे बड़े खोटे कर्म हैं। अरे,! तुमने तो ऐसे अच्छे कर्म किये हैं कि तुम्हें मनुष्य का चोला मिला और आंख, नाक, कान सब अंग बराबर हैं। फिर तुम्हें मालिक से मिलने की चाह पैदा हुई। सोचो! करोड़ों में से कितनो को यह चाह होती है? सभी लोग जगत् में फंसे रहना चाहते हैं। तुम आये भी, तो इस सत्य के मंदिर में और सत्पुरूष परमतत्वाधार के पास बैठे हो, तो तुम तो कितने भाग्यशाली हो। अब उस भाग्य को ठुकराना चाहो, तो तुम्हारी मर्जी। श्रद्धा और विश्वास को समझने की एक बात है–

'एक जन्म गुरू भक्ति कर, जन्म दूसरे नाम।'

जब तुम भक्ति करोगे, प्यार करोगे, तब सद्गरू नाम देगा। नाम यह नहीं कि 600 आदमियों को खड़ा करके कह दिया कि पंचनाम जपा करो। बल्कि हर व्यक्ति को उसके जैसे संस्कार हैं, उन संस्कारों के मुताबिक सहज में उसके कर्मों को काटने के लिए जो हिदायत दी जाती है, वह नाम है। फिर उसे उस हालत पर ले जाना जो 'राधास्वामी' हालत है, यह नाम है। नाम उसको मिलता है जो इस जगत् में रहते हुए घबराता नहीं हैः–

'उतते सतगुरू आइया, जाकी बुद्धि मति धीर।
भवसागर के जीव को, खेय लगावे तीर।।'

सद्गुरू वक्त के अंदर सभी तत्व मौजूद होते हैं। तो वे कैसे पार लगाते हैं? उसकी निशानी है कि "जिसकी बुद्धि मति धीर" है जो अपने आप में स्थिर है। जब आपकी मति स्थिर होगी तो आप गुरूमुख हो जाआगे। इसलिए गुरूमुख होकर गुरू की कही हुई बात पर चलो।

जब तुम "मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यम्" पर चलोगे, तब तुम्हारी बुद्धि मति धीर होगी। सतसंग में आने का मतलब यही हैः–

आ गये सतसंग में और संग सत का हो गया।
दुर्मति जाती रही और गुरू के मत का हो गया।।

'जैसी संगत वैसी रंगत' संग सत का हो गया अर्थात् सद्गुरू की आंखों में देखते–देखते उसका सत् तुम्हारे में आ जायेगा और वह सत् तुम्हारा सत् हो जायेगा। जैसा गुरू है तुम भी वैसे ही हो जाओगे। 'दुर्मति जाती रही' का मतलब है कि गुरू को अपने से अलग समझना यह दुर्मति है और उस जैसा बन जाना यह दुर्मति को मिटाना है।

जब तुम्हें नाम मिल जायेगा और तुम नाम की हालत पर पहुंच जाओगे, तब यदि आपके ऊपर दुख भी आयेगा, तो तुम घबराओगे नहीं। आपकी दृष्टि बदल जायेगी। जिसकी मति धीर नहीं है, वह कभी राम

के मंदिर में जायेगा, कभी हनुमान के मंदिर में जायेगा। इससे कुछ भी हासिल नहीं होगा। हनुमान जी को मैंने भी बचपन में माना है। मैंने ऐसे भी हनुमान के भक्त देखे हैं जो कहते थे कि हनुमान जी उसके अंदर आ गये। एक व्यक्ति हमारे साथ रहता था और कहता था कि हनुमान जी उसके अंदर आ गये। एक दिन वह हनुमान की तरह बड़ा चिंघारने लगा। मैंने उसे जोर से पकड़ा और नीचे बैठा दिया और कहा "बैठ जा हनुमान", उसके होश ठिकाने आ गये।

मुलतान शहर में चौक बाजार में हनुमान जी का मंदिर था। उस मंदिर में बहुत लोग जाते थे, बचपन में मैं भी बहुत जाता था और प्रार्थना करता था कि अगर मेरा वजीफा आ गया, तो पांच पैसे का प्रसाद चढ़ाऊँगा। मेरा वजीफा आ गया। लेकिन मेरे मन में असल बात यह थी कि मेरा विश्वास हनुमान जी की मूर्ति से टकरा कर मेरे पास आया और जब मैं सवालों का जवाब दे रहा था तो मैं अपनी बुद्धि से दे रहा था; लेकिन समझ यह रहा था कि हनुमान जी की शक्ति काम कर रही है। उस समय 8 साल की उम्र में मेरा यह विचार था।

भारत–पाक विभाजन के बाद हम भारतवर्ष आ गये और जब बड़े हुये तो जोधपुर में रहते थे। जोधपुर में पहाड़ी पर बड़ा सुंदर कालेश्वर का मंदिर था। वास्तव में शंकर ही संतमत का इष्ट है। रविवार के दिन मैं और मेरा चचेरा भाई महाराज किशन महा कालेश्वर के मंदिर जाते और घंटो तक समाधि ध्यान में बैठते थे। भगवान जी नाम का एक बालब्रह्मचारी वहां का पुजारी था। वह कहता था कि उसे अपने एक हजार जन्मों के बारे में पता था। एक बार शिवरात्री के अवसर पर बहुत से भक्त थे जो भांग घोट रहे थे। उनमें एक मुरलीधर नाम का भक्त भी था जो मेरे भाई को कहता था कि आपके भाई के अन्दर एक खास बात है।

अब मुरलीधर ने भंग घोटी और जब हम समाधि से उठे, तो उसने हमें पीने के लिए कहा, तो मैं दो–तीन गिलास पी गया। हम घर आ गये। महाराज किशन तो कहीं चला गया और मैं धर्मपत्नी भाग्य को पढ़ा रहा था। शाम का समय था। इतने में मुरलीधर घबराया हुआ आया। मैंने कहा कि क्या बात है? कहने लगा कि मुझे भगवान जी ने भेजा है और कहा है कि देखकर आओ कि डाक्टर साहब ठीक तो हैं। मैंने कहा कि मुझे तो नींद भी नहीं आई। मुरलीधर ने कहा कि बात यह है कि भंग के अंदर हमने धतूरा डाल रखा था। अब देखो! धतूरे से

आदमी पागल भी हो सकता है। लेकिन उसका असर हम पर नहीं हुआ क्योंकि जब मालिक से तार बंधी हुई है, तो दुनिया की कोई भी चीज नुकसान नहीं पहुंचा सकती है।

जैसा गुरू आपको नाम दे या काम दे, वेसा करो। उस नाम को इतना पकाओ या उस काम में इतने लीन हो जाओ कि हर जगह वही दिखाई दे, तब सच्चाई समझ में आयेगी। दाता दयाल जी कहते है–

गुरू तो तेरे पास, फकीरा, गुरू तो तेरे पास।
तेरे तन में तेरे मन में, तेरे सांसों सांस।।

हर सांस में राधास्वामी, हर सांस में गुरू का नाम लेना चाहिए। इस नौजवान के मन में जब नाम था, तो इसकी शक्ति से, मालिक की ही शक्ति से इसको कुछ नहीं हुआ। यह मामूली सी बात है।

'जन्म तीसरे मुक्तिपद, चौथे में निजधाम।'

जब हर समय उसके प्यार में डूबे रहोगे, तो वह अवस्था आ जायेगी कि आप जहां भी हो, जिस हाल में भी हो, जिस चाल में भी हो, वहां आनंद मिलेगा, आपको कहीं भी कोई दुख नहीं होगा। दुख तो हम स्वयं पैदा करते हैं। हम मकड़ी की तरह जाला बुनकर उसके अंदर फंस जाते हैं और वह जाला है सांसारिक सुख की इच्छा का; परंतु सांसारिक सुख भी नहीं मिलता। जब आपने गुरू को भुलाया, तो आपके ऊपर कष्ट आने शुरू हो गये। जब कष्ट आयें, तो सोचो कि हमने क्या गलती की है। थोड़ी देर के लिए भी अविश्वास किया तो, तो आपके ऊपर कष्ट आने शुरू हो जायेंगे क्योंकि आप इस रास्ते में आ चुके हो। इसलिए सोचो कि आपने कहां कोताही की हे, जरूर मनमुख हुए होगे। जब गुरूमुख रहोगे तो जीवन्मुक्ति अपने आप मिल जायेगी। मुक्ति का मतलब है आजादी, हर किस्म की आजादी। अव्वल तो दुख होगा नहीं, यदि दुख आयेगा भी तो तुम्हें महसूस नहीं होगा। इसे कहते हैं चश्में वाहदत। चश्में वाहदत के बाद जीवन आनंदमय बीतेगा। हर क्षण आपको आनंद ही आनंद मिलेगा क्योंकि हरऐक के अंदर, हर घटना के अंदर उसी मालिक की झलक दिखाई देगी। लेकिन इस हालत को पाने के बाद–

'चश्में वहादत भी मिली, वहादत का मंजर देखकर।
कर रहा है रात–दिन दुनिया की मंजिल का सफर।।'

आप भी ऐसा ही सफर करोगे, जैसा महाराज जी ने किया। आप एकत्व देखने के बाद एकत्व देख रहे हैं; पर लोग तो एकत्व नहीं देख रहे

हैं। लोगों के एकत्व न देखने के बावजूद अपनी मंजिल की ओर चलते जाना। क्यों:–

'क्या है दुनिया ख्वाब है, और ख्वाबबीं जाते फकीर।
दामेहिर्सो मालोजर में वह नहीं हरगिज असीर।।'

जितनी इच्छाओं को बढ़ाते जाओगे, जितना आप समझते हो कि ज्ञान–इन्द्रियों के सुख को भोगो, जितना ज्यादा ज्ञान–इन्द्रियों में पड़ोगे, उतनी ही इनकी अग्नि धधकती चली जायेगी। कहीं भी उनकी तृप्ति का ठिकाना नहीं। जब पूरी तरह से किसी चीज को तृप्त नहीं कर सकते तो उसकी तरफ भागना बिलकुल वैसा ही है जैसे मृगतृष्णा। मृगतृष्णा क्या है? रेगिस्तान के अंदर प्यासे आदमी को कुछ दूरी पर पानी का दरिया दिखाई देता है; लेकिन जैसे–जैसे वह आगे जाता है, वह दरिया दूर ही दूर होता जाता है और वह प्यास से मर जाता है, यह है मृगतृष्णा। आप भी दुनिया के पीछे भागते हैं। आप समझते हो कि आपको पत्नी सुख देगी, बेटे सुख देंगे, धन सुख देगा, मित्र सुख देंगे; लेकिन यह कोई भी आपको सुख नहीं देगा। अच्छा है कि आपको धोखा मिले। जब धोखा खाओगे, तब होश में आओगे कि ये मेरे नहीं हैं। यह माया जाल स्वयं आपका बनाया हुआ है। यह मायाजाल कैसे कटेगा? यह गुरू की संगत से कटेगा। वह सत्पुरूष जिसे तुमने इष्ट बनाया है यदि सत्पुरूष नहीं भी है तो भी तुम अपने विश्वास के कारण तर जाओगे। यदि वह सत्पुरूष है, तब तो सोने पर सुहागा है। उसकी संगत से तुम उस जैसे हो जाओगे।

'आ गये सतसंग में और संग सत का हो गया।
दुर्मति जाती रही और गुरू के मत का हो गया।।'
'काट देगा तू सहज में आप ही भव जाल सब।'

संतमत में तीन चीजें मुख्य हैं–सतगुरू, सतसंग और सतनाम। सबसे आसान सतसंग है। आप जब सतसंग में आओगे; तो आपको सद्गुरू भी मिलेगा जिससे आप सतसंग सुनोगे और वही आपको सतनाम भी देगा। नाम वह हालत या अवस्था है जहां पहुंचने के बाद आपकी दुनिया के उतार–चढ़ाव होते हुए भी कष्ट नहीं होगा। जब सतसंग में आओगे, तो सहज में ही भव के जाल से छूट जाओगे। सहज का मतलब है जहां आपको कुछ भी कोशिश नहीं करनी पड़े, जो चीज अपने–आप हो जाये और आपको कुछ न करना पड़े। न तो हमें पूजा करने की जरूरत है, न घटिण्यां बजाने की, न ब्राह्मण को बुलाकर ग्रह टलवाने की जरूरत है; सिर्फ सतसंग में आने की जरूरत है। लेकिन बात यह है कि जब सस्ती चीज मिल जाती है, तो शक

हो जाता है कि यह असली है या नहीं। किसी को भेड़ सस्ती मिल गई, तो वह बार–बार देख रहा था कि कुत्ता तो नहीं है। जब सस्ती चीज मिल जाती है, तो लोग उसकी कदर नहीं करते। जहां गुरू महाराज के दर्शन टेलीवीजन पर ही होते हैं, लाखों लोगों की भीड़ होती है, वहां आपको अच्छा लगता है। यहां पर बिना तकलीफ के तुम उस अवस्था को पहुंच जाओगे, जिस पर पहुंचने के बाद तुम्हारी दुनिया के दुख नहीं रहेंगे और सहज में ही आपके बनाये हुए भव के जाल कट जायेंगे।

भव का जाल मनुष्य कैसे बनाता है? एक औरत थी सवेरे से ही घर में सबके साथ लड़ाई करती थी। एक दिन वह उठी और अपने पति को कान पकड़ कर उठाया और बोली, "उठो जी, उठो।" पति बेचारा चुप रहा। लड़ाई का कारण नहीं मिला। फिर बहू और बेटी के साथ भी ऐसा ही किया; मगर वह भी चुप रहीं। जब उसे गुस्से का कारण नहीं मिला, तो वह नहर के पुल पर जाकर खड़ी हो गई और पानी में एक पत्थर मारा। पानी से आवाज आई–'डुबुक' वह औरत गुस्से में बोली, 'तू डूबुक, तेरा बाप डुबुक' तेरा खसम डुबुक। मैं क्यों डुबुक? उधर से एक शरीफ आदमी जा रहा था, वह कहने लगा, "माई, किसके साथ लड़ रही है?" वह कहने लगी, "तेरे साथ लडूंगी।" जब लड़ाई का कोई कारण नहीं होता, तब मनुष्य अपने–आप ही भव का जाल बनाता है:–

'गुरू की संगत से कटेंगे, सहज माया जाल सब।'

यह सस्ता और सच्चा सौदा है:–

मुख्य साधन संग सत का, और शेष हैं समझ गौण।
इससे सूझेगी परमगति, सद्गति की चाल सब।।

यह इतना आसान तरीका है कि सत् की संगत से आपके सब काम बन जायेंगे। पहले जमाने में जितने साधन थे, चाहे वह ध्यान का था, चाहे वह यज्ञ का था, चाहे पूजा–पाठ का था, उन सब में संतमत का साधन सबसे आसान है। संतमत कहता है कि ध्यान करो। किसका? जीते–जागते गुरू का। यदि पत्थर की मूर्ति का ध्यान करते–करते मीरा इतनी ऊँची चढ़ी कि शरीर को भी साथ ले गई, तो इससे ज्यादा क्या हो सकता है? मीरा ने पत्थर की मूर्ति को पूजा का लक्ष्य मानकर, प्यार करके, उसे परम–तत्व मानकर मालिक को प्रकट कर लिया, तो जीते– जागते गुरू से जो बातचीत भी करता है, आपके दुखों को सुनकर जवाब भी देता है, उससे क्या नहीं हो सकता? सद्गुरू वक्त वही है जो आपके सभी सवालों, सभी शंकाओं और आपकी सभी समस्याओं का हल निकाले। यदि वह आपकी

समस्याओं का समाधान नहीं करता तो वह सद्गुरू वक्त नहीं हो सकता, संत तो हो सकता है।

इसलिए आप उस गुरू का ध्यान करो जिसने सतसंग को अपनी कमाई का साधन नहीं बना रखा है। वह सिर्फ अपने गुरू की आज्ञा का पालन कर रहा है या कर्त्तव्य का पालन कर रहा है। इससे उसकी शक्ति इतनी प्रबल हो जाती है कि सारे विश्व से उसका प्रेम हो जाता है। यह उसकी निशानी है। उसकी मूर्ति का ध्यान करने से आपको हर हालत में फायदा पहुंचेगा। नहीं तो वह वीतराग पुरूष नहीं है। इसलिए कहा गया हैः– **'ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः'।**

तो सत्पुरूष की मूर्ति पर, वीतराग पुरूष की मूर्ति पर ध्यान करने से आपको ध्यान भी आ गया और **'मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यम्'** से मंत्र भी आ गया। तुम्हें किसी और किताब को पढ़ने की जरूरत नहीं है। मैं भगवद्गीता की बात करता हूं। एक बार मेरे सतगुरू बाबा फकीर ने कहा कि भगवान् कृष्ण के मुख से गीता का उपदेश सुनने के बाद भी अर्जुन नरक में गया। क्यों गया? मैंने कहा महाराज जी इसमें कोई गलत बात नहीं है। इसका मतलब यह नहीं कि भगवान् कृष्ण सत्पुरूष नहीं थे। हरऐक आदमी जब मरता है, तो उसके इस शरीर में से सूक्ष्म शरीर निकल कर जाता है, जो प्राणमय शरीर का कोष होता है। आजकल उस सूक्ष्म शरीर की फोटो भी ली जाती है। उस सूक्ष्म शरीर में हड्डी, मांस कुछ नहीं होता, लेकिन वह चलता भी है, देखता भी है, सुनता भी है, मगर चख नहीं सकता। आम आदमी को यह पता नहीं चलता कि वह मर गया है। इस पृथ्वी का भी प्राणमय कोश है। प्राणमय पृथ्वी का यह वातावरण है, जिसे वायुमण्डल भी कहते हैं। तो मृतक व्यक्ति पृथ्वी के वातावरण में तीन दिन तक रहता है। तीन दिन रहने पर आमतौर पर उसकी सब इच्छाएं समाप्त हो जाती है। तब वह प्राणमय शरीर को छोड़कर मनोमय कोश में जाता है। वहां पर सब चीजें मन की बनी हुई होती हैं जैसे स्वप्न में होती हैं; लेकिन वह साकार स्वप्न होता है। अगर मृतक व्यक्ति हिन्दू है और वह मंदिर जाता है, तो उसे वहां मंदिर मिल जायेग। यदि सिक्ख है, तो उसे गुरूद्वारा मिलेगा, यदि मुसलमान है तो उसे मस्जिद मिलेगी; लेकिन यह मनोमय कोश है। वहां आपस में लड़ते–झगड़ते नहीं हैं। इस मनोमय कोश में उसे होश आता है कि कि मैंने दुनिया के अंदर बड़ा अन्याय किया, सतगुरू नहीं बनाय। यदि मृतक जल्दी वापस आ जाय और उसे सतगुरू मिल जाय तो वह

निजघर वापिस जा सकता है, लेकिन उसे निजघर पहुंचने में देर लगेगी। इस प्राणमय कोश में संत नहीं ठहरता। महाराज जी ने कहा कि युधिष्ठर को भी आधा घण्टा ठहरना पड़ा था। मैंने कहा कि महाराज जी, उसकी अच्छी किस्मत थी, वरना साधारण लोग तो तीन दिन ठहरते हैं। नरक क्या है? प्राणमय कोष में रहना ही नरक है। प्राणमय कोष में रहने वाला अगर शराब पीता है, तो वह ऊपर जाकर शराब के ठेके में भी जायगा, लोगों को खाते–पीते देखेगा, मगर स्वयं कुछ भी चख नहीं सकता, यही तो नरक है। ऐसा व्यक्ति जिसने लोगों को ज्यादा दुख दिया है, उसे यहां तीन दिन, तीन साल या तीन सौ साल तक भी रहना पड़ सकता है। मैंने कहा कि महाराज जी, उस नरक में युधिष्ठर को कुछ मिनट ही रहना पड़ा। **महाराज जी आप कहते हैं कि गीता पढ़ने से कुछ नहीं होता, आप बिलकुल ठीक कहते हैं क्योंकि ऐसा कहने से आपका मतलब होता है कि गीता के समझने के लिए भी गुरू होना चाहिए।**

वास्तव में तो हम सभी परमतत्व हैं; लेकिन उस परमतत्व को जगाने के लिए सतसंग की जरूरत है। पिछले जमाने के जितने साधन थे, सब में मेहनत करनी पड़ती थी परंतु संतमत में **'पूजामूलं गुरोः पदं'।** अर्थात् जीते–जागते गुरू को नमस्कार करना है। उसके पांव में सिर रखना है, क्योंकि उसके सामने सिर झुकाने से आपका अहंकार समाप्त हो जाता है। आपका अहंकार गया नहीं और मालिक आपके अंदर आया नहीं। पूजा का यह आसान तरीका हैः–

"जिसने पाया पाया सतसंग से भक्ति ज्ञान गम।
तू उतारेगा विवेक और तर्कना की खाल सब।।"

अब जितने साधन बताये हैं, सब कठिन हैं–जैसे कर्म–काण्ड है, ज्ञान है। ज्ञान का मतलब है कि सच्चाई को अपने अन्तस् में देख लेना। जिस सच्चाई के लिए बड़े–बड़े विद्वान तर्क करते हैं, बाल की खाल उतारते हैं–आपको यह सब जानने की जरूरत नहीं है। यह सब कुछ उस सत्पुरूष के अंदर मौजूद है। उसकी संगत में बैठने से आपको सब ज्ञान हो जायेगा। महाराज जी ज्यादा पढ़े–लिखे नहीं थे लेकिन जो–जो बातें ज्ञान की वे करते थे और जब मैं कहता था कि महाराज जी यह तो उपनिषदों में है या वेद में है तो वे कहते थे कि भई मुझे मालूम नहीं। इसका मतलब है कि मैं ठीक हूंः–

"कर्म धर्म वेराग्य ज्ञान तत्, विज्ञानी पूरा सच्चा।
हे दयाल करो दृष्टि दया की, हृदय दुखी हमारा है।।
अब तो शरण में आन पड़ा हूं, ऐसी आस तेरी मुझको।
राधास्वामी चरन से प्रीत रहे, नित वही धुर इष्ट सहारा है।।"

मुझे एक आदमी की चिट्ठी आई है उसने लिखा है महाराज जी! मैंने बड़ी किताबें पढ़ी है, बड़े धर्मग्रंथ पढ़े हैं, कल्याण पढ़ता हूं, भगवद्गीता पढ़ी है, इसलिए आप मुझें मानव मंदिर भेजा करें (उसने मानव मंदिर कहीं पढ़ा होगा)। जो एक बार मानव मंदिर पढ़ लेता है वह कहता है कि ऐसा ज्ञान कहीं नहीं पढ़ा।

धर्म कई प्रकार के होते हैं। वैसे धर्म तो एक ही है। कुछ लोग ध र्मशाला बनवाते हैं, हस्पताल बनवाते हैं, लेकिन इन सब चीजों से परम– तत्व की प्राप्ति नहीं होगी। हां, उनको अच्छा जन्म मिल जायेगा। लोग कहते हैं कि जहां सबसे बड़ा डेरा हो वही हमें परमतत्व तक ले जायेगा। मगर यह बात गलत है। हस्पताल, धर्मशाला बनाने को लोग धर्म समझते हैं, ऐसा नहीं है, हां यह अच्छा कर्म जरूर है। इस कर्म से तुम अगले जन्म में एक बड़े सेठ बन जाओगे, लेकिन तुम्हें जन्म तो लेना ही पडेगा।

"कर्म धर्म वैराग्य ज्ञान तत"।

मैं जानता हूं कि उदयपुर के अंदर एक ब्राह्मण है, वह बहुत कर्मकाण्डी है। उदयपुर में एक बड़ी झील है। एक बार वह झील बिलकुल सूख गई। मछलियां मर गईं तो उसने यज्ञ कराया और यज्ञ भी ऐसी विधि से कराया कि दो–तीन दिन बाद ही इतनी वर्षा हुई कि वह झील पानी से भर गई और आज तक उसका पानी कभी नहीं सूखा। यह कर्मकाण्ड है। कर्म के लिए कर्मकाण्ड की जरूरत नहीं, वैराग्य के लिए जंगल में जाने की जरूरत नहीं। मैं समझता हूं कि जो इस सांसारिक ज्ञान को प्राप्त करता है, वह फंस जाता है। इसलिए कहते हैं कि संत प्रशासन (एडमिनिस्ट्रेशन) नहीं कर सकता। लेकिन संत के पास बैठने वाला अगर प्रशासन करेगा तो बड़ा सफल होगा। संत के परामर्श से प्रशासन अच्छा चल सकता है, अगर वह गुरूमुख रहे, मनमुख न बने।

धर्म, कर्म, वैराग्य ज्ञान तत'– यह तत्व की बातें आपको जानने की जरूरत नहीं है। आप केवल सद्गुरू के साथ प्रेम करो, प्यार करो चाहे भाई मानकर करो, चाहे पिता मानकर करो, चाहे गुरू मानकर करो, चाहे शत्रु मानकर करो, लेकिन गुरू से संबंध रखो। चाहे गुरू को गाली ही देते रहो–गाली भी तो लंगोटिये ही देते हैं। मुझे एक कहानी याद आ गई।

रामसिंह नाम का एक व्यक्ति था जिसे ज्ञानसिंह ने खाने पर बुलाया। जब रामसिंह चलने लगा तो रास्ते में लक्ष्मणसिंह मिल गया और बोला "किधर जा रहे हो"? रामसिंह ने कहा ज्ञानसिंह ने खाने पर बुलाया है तो लक्ष्मणसिंह बोला मैं भी चलता हूं। रामसिंह ने कहा तू कैसे चलेगा? लक्ष्मणसिंह ने कहा "मैं तुम्हारी तुफैल बन कर चलूंगा।" जब वे आगे गये तो रास्ते में अमरसिंह मिल गया और कहने लगा "तुम दोनों किधर जा रहे हो।" रामसिंह ने कहा कि ज्ञानसिंह ने मुझे खाने पर बुलाया है और लक्ष्मणसिंह तुफैल बन कर जा रहा है। अमरसिंह ने कहा "मैं तुफैल कि तुफैल बन कर साथ चलता हूं।" कुछ दूर आगे चले तो आगे लहनासिंह मिल गया और कहने लगा कि तुम तीनों किधर जा रहे हो? सारी बात बताने पर उसने कहा कि "मैं भी चलता हूं क्योंकि वह तो मेरा लंगोटिया यार है।" जब वे चारों ज्ञानसिंह के घर पहुंचे तो उसने रामसिंह से कहा कि बुलाया तो एक तुझे था ये चार कैसे आ गये? रामसिंह ने सारी बात बता दी कि लक्ष्मणसिंह मेरी तुफैल है और अमरसिंह तुफैल की तुफैल है। इस पर ज्ञानसिंह बोला कि चलो यह तो मान लिया लेकिन यह साला उल्लू का पट्ठा, गधे का बच्चा लहनासिंह कैसे आ गया? लहनासिंह बोला देखो! मैं कहता था न कि ज्ञानसिंह मेरा लंगोटिया यार है। तो जो लंगोटिया होते हैं वे एक दूसरे को गाली भी देते हैं।

इसलिए आपको किसी ज्ञान–विज्ञान की जरूरत नहीं है। आप गुरू के लंगोटिये बन जाओ फिर चाहे गुरू को गाली ही क्यों न निकालो, गुरू से हंसी मजाक ही क्यों न करो, गुरू तुम्हें पार ले जायेगा। "विज्ञानी पूरा सच्चा" सतगुरू विज्ञानी होता है जो इस जगत् के भेद को जानता है। वह मेहरमेराज (परमदयाल) होता है। वह आपको हर किस्म का भेद बता देता है। गृहस्थ का भी भेद बता देता है और परलोक का भी भेद बता देता है। व्यापार में चालाकी का भी भेद बता देता है और ऐसा विज्ञान बतयेगा जिस पर चलने से तुम्हें कभी हानि नहीं पहुंच सकती। ऐसे गुरू की शरण में आने से आपके सभी काम बन जायेंगे।

'अब तो शरण में आन पड़ा हूं, सक आस तेरी मुझको।'

जिस पर आप आस रखते हो, सब कुछ उस पर छोड़ दो, सब कुछ उस पर न्यौछावर कर दो। अगर नहीं छोड़ते तो उसी के साथ चिपके रहो। ये प्रेम, भक्ति, सद्भावना एक दिन का काम नहीं है। **यह पार्टटाइम जौब नहीं है** कि चार घन्टे काम करने पर आपको आधी तन्ख्वाह मिल जायेगी। यहां तो 24 घन्टे उसी की रट और उसी का ध्यान करना पड़ता है, तब काम बनता है।

'कुछ दिनों संगत हो कुछ दिन, नाम कुछ दिन मुक्त गति।
इसके पीछे पद है सत् का, सत् की रीति पाल सब।।'

कुछ दिन गुरू की संगत हो। नारायण दास जी बड़े प्रेम से मेरी मालिश करते हैं। मेरी समाधि लग जाती है। चूंकि मैं समझता हूं कि यह शरीर आपके लिए है इसलिए मुझे आनंद आता है। कुछ दिन भक्ति हो, अब मैं समझता हूं कि लोगों की क्यों इच्छा होती है कि हम खाना बनाकर महाराज जी के लिए ले जांय। यह आपका प्रेम है। आप चाहते हैं कि महाराज जी को अच्छा भोजन मिले, महाराज जी का स्वस्थ्य अच्छा रहे। छोटे–छोटे बच्चों को ध्यान रहता है। 8–8 साल के बच्चे मुझ खत लिखते हैं कि आप अपने शरीर का ध्यान रखें। यह बड़ी भारी सेवा होती है।। तो कुछ दिन भक्ति हो और कुछ दिन सेवा हो, उसके बाद है नाम। नाम की भक्ति यह है कि हर वक्त उसका नाम लेना। आपका यहां आना भी शारीरिक सेवा है। शरीर के बाद मन आता है। मन की सेवा है नाम। गुरू की सेवा करना भी नाम है। हर समय उसी की बात करना, उसे याद करना भी गुरू की महान सेवा है। इससे मन की शक्ति बढ़ जाती है और गुरू का रूप तथा नाम हमेशा आपके साथ रहता है और हरदम आपकी रक्षा होती रहती है।

इसके कुछ दिन बाद मुक्तिपद आता है। फिर आप उस अवस्था में आ जायेंगे जहां आपको हर जगह मालिक दिखाई देगा। अब हर जगह मालिक को देखने का मतलब है कि आपका प्रेम चाहे महाराज जी से हो, चाहे मुझसे हो, चाहे बाबा चरणसिंह से हो मगर प्रेम में अंतर नहीं होगा अर्थात् सभी के साथ एक जैसा प्रेम होगा। सभी में मालिक दिखाई देगा। यह यब उस हालत में पहुंचने के बाद पता चलता है। आप लोग उस हालत पर न पहुंचने के कारण अलग–अलग हैं। पहले तो एक से अर्थात् एक रूप से प्रेम करना जरूरी है, जब उस रूप के अंदर का परमतत्व आपके अंदर आ जायेगा तब वह सब जगह दिखाई देगा। असल बात यह है कि सभी गुण धार में आते हैं जब एक गुरू दूसरे गुरू को धारा दे जाता है। आपके अंदर भी वह सारे गुण मौजूद हैं। यह एक राज की बात है और इसको मेहरमेराज (परमदयाल) ही जान सकता है कि उसमें सब गुण मौजूद हैं। बस उसी की भक्ति करने से आपकी भक्ति ऐसी हो जायेगी कि आपके अंदर चश्में–वाहदत आ जायेगी। मैंने खुद देखा है कि महाराज जी एक जैन के घर गये तो उसने महावीर जी की आरती करनी शुरू की। महाराज जी भी हाथ जोड़कर खड़े हो गये लेकिन महाराज जी दाता दयाल जी का ध्यान कर रहे थे क्योंकि दाता दयाल जी जब पूर्ण हैं तो हरऐक के अंदर मौजूद हैं। इसलिए किसी

से द्वेष नहीं। राधास्वामी मत किसी का खण्डन नहीं करता। जिसको राधास्वामी का अनुभव नहीं हुआ वह खण्डन करेगा और कहेगा कि मैं दयालबाग का हूं, मैं ब्यास का हूं, मैं स्वामीबाग का हूं। यह बहुत गलत है, यह तो कालमत है। वास्तव में कुछ दिन बाद आपकी ऐसी अवस्था आ जायेगी कि आपको किसी चीज की जरूरत नहीं रहेगी, लेकिन यह अवस्था सतपद पर पहुंचने के बाद आती है।

'अर्थ धर्म और काम मुक्ति, की है कुंजी सत् का संग।'

सत् की संगत 'सतगुरू के साथ रहना या सतगुरू से बातचीत करना या सतगुरू से अपने बारे में अपनी चीजें मांगना एक दृष्टि से ठीक है। सतगुरू यह कभी नहीं कहता कि आप 24 घण्टे मेरे साथ रहो या 2 घण्टे नाम जपो। महाराज जी आपको कहते थे कि पहले कमाओ। सतगुरू आपको धन प्राप्त करने का तरीका बतायेगा जिससे आपकी कामनाओं की तृप्ति होगी और उस तृप्ति से आपका नुकसान भी नहीं होगा।

नारायण दास जी जो सद्गुरू का काम कराता है वह दुनियावी नहीं होता, उसके अंदर राज होता है। फर्क यह है कि वह जो काम करायेगा उससे आपको कोई नुकसान नहीं होगा। इसलिए वह हर किस्म का प्रसाद देता है–

'सांई के दरबार में कमी काहु की नाहिं।
बन्दा मौज न पावहीं चूक चाकरी माहिं।।

कौन सी चीज है जो तुम्हें नहीं मिलेगी। अर्थ मिलेगा, धर्म अपने आप हो जायेगा, सबके साथ प्रेम हो जायेगा, दूसरों की सेवा हो जायेगी और मोक्ष भी मिल जायेगा। ये चारों चीजें मिलती हैं:–

'राधास्वामी संग कर दे काट अब जंजाल सब'

राधास्वामी आदि सुरत का नाम,स्वामी आदि शब्द पहचान।

राधा लोक है स्वामी परलोक है। लोक और परलोक यहां पर दोनों बनते हैं। राधास्वामी रास्ता है, राधास्वामी नाम है, राधास्वामी अवस्था है। आज आपको इतना कह दिया। इन्हीं शब्दों के साथ मैं आपको सद्भावना देता हूं और आशीर्वाद देता हूं।

सभी को राधास्वामी।

सत्संग परम संत हुजूर शब्दानन्द जी महाराज

(दुर्गापुर दिनांक 15.11.2005)

सतगुरू परम दयाल री, कोई कदर न जाने।
देह धरें जीव भार उठावें, काटें यम का जाल री कोई।। कदर
जीव अनाड़ी जग झक मारें,दुख सुख संग बेहाल री कोई।।कदर
दया मेहर निज वचन सुनावें, मेटे घट दुख सालरी कोई।। कदर
छूटन की वह युक्ति बतावें, घट में चलावें चाल री कोई।। कदर
दया मेहर से करनी करावें, कर दें माला माल री कोई।। कदर
घट के बैरी सभी नसावें, मारे काल कराल री कोई।। कदर
निस दिन तेरी दया विचारें, जस माता संग बाल री कोई।।कदर
अन्त समय जब तेरा आवे, आप हुये रखवाल री कोई।। कदर
घट तेरे में प्रकट करावें, अपना रूप विशाल री कोई।। कदर
पकड चरन तू निज घर जावे, काल करम पामाल री कोई।।कदर
राधास्वामी सतगुरू मोहि अस भेंटे, हो गई मैं खुशहाल री कोई।। कदर

राधास्वामी!

ज्ञान दाता सत्गुरू का स्वरूप क्या है? ज्ञान दाता सत्गुरू दया का अनन्त सागर होते हैं, परंतु कोई उनकी कदर नहीं करता। उनको दया का सागर क्यों कहा गया है? वे कैसे दया के सागर है? सत्गुरू क्या करते हैं? आप जानते हैं कि सब दुखों का मूल कारण है देह धारण करना। जीव जब शरीर धारण करता है तो दुख सुख का सिलसिला शुरू हो जाता है। हम सबकी तो मजबूरी है शरीर धारण करना और दुख सुख उठाकर मरना क्योंकि हम तो कर्म के चक्कर में फंसे हुये है लेकिन सत्गुरू के साथ तो ऐसी कोई मजबूरी नहीं है फिर वह क्यों शरीर धारण करता है। यम क्या है? यम और नियम ये हमारे ऋषियों ने मानव के जीवन को नियमित और संतुलित रखने के लिए निरधारित किए थे। जो कुछ हम धारण करते हैं वह नियम है और जो खारिज करते हैं वह यम है। यम क्या है? यह मौत है–जिसे हम खारिज करते हैं। सत्गुरू मौत के जाल को काट कर हमारी रक्षा करते हैं। हम संसार के अन्दर बालकों

की तरह अनाड़ी की तरह झक मारते रहते हैं। हमें संसार में इस मनुष्य योनी के लक्ष्य का पता नहीं है। यह संसार दुख सुख का द्वन्द्व है। इस संसार में कोई भी शरीर धारी सुखी नहीं है। सत्गुरू की दया क्या है? सत्गुरू की दया यह है कि वो सत्संग दया के वचन फरमाते हैं। ऋषि–मुनि भी इस संसार मे डूब जाते हैं, अवतारी पुरूष भी इस भवसागर में उलझे रह जाते हैं तो आम आदमी की तो बात ही क्या है। तो सत्गुरू क्या करता है? सत्गुरू अपनी दया से शब्द जहाज में अधिकारी जीवों को बैठाकर इस भवसागर से पार कर देता है।

इस संसार से हमारा बेड़ा पार करने वाले केवल एक मात्र सत्गुरू है जो शब्द जहाज के द्वारा बेड़ा पार करते हैं। सत्गुरू जो सत्संग में वचन फरमाते हैं उनके शब्द से हमको पूर्ण ज्ञान हो जाता है, हमारा अज्ञान नष्ट हो जाता है। इसलिए संत तुलसीदास जी ने कहा है–

बदौं गुरू पद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुज, जासु वचन रवि कर निकर।।

यह संसार महा मोह तम पुंज है इससे गुरू के वचन ही बचा सकते हैं क्योंकि गुरू के वचन से ही अज्ञान का अंधकार मिटता है, जैसे सूर्य के निकलने पर रात्री का अंधकार मिट जाता है। एक बात तो यह हुई दूसरी बात यह है कि एक शब्द तो हमें फंसाता है और एक शब्द हमें छुड़ाता भी है। संसार में जितने नकली गुरू हैं उनके वचनों से हम फंस जाते है, कहा भी गया है "वाणी जालम् महा जालम्।" एक सत्गुरू के वचन से हमको सच्चा ज्ञान मिलता है, सच्चा रास्ता मिलता है और हम भव सागर से या अज्ञान से बच जाते हैं। असली शब्द तो हमारे घट में है और सत्गुरू का असली रूप भी शब्द ही है। बाहर के सत्गुरू से अन्दर का शब्द प्रकट होता है। इसलिए स्वामी जी महाराज ने फरमाया है–

कलियुग में स्वामी दया विचारी,
प्रगट करके शब्द पुकारी।।

इस प्रकार शब्द के दो रूप हैं– एक Potential और दूसरा Kynatic। जो पावर हाउस से बिजली मिलती है वह Potential है उसका कोई रूप नहीं है, जो बिजली घरों में आती है वह Kynatic है। उससे हम पंखें, बल्ब और अन्य उपकरण चलाते हैं। उसी तरीके से जब

शब्द 'अशब्द' अवस्था में रहता है उसे अव्यक्त अवस्था भी कहते हैं तो वह गुप्त रहता है, अनाम होता है और जब वही शब्द प्रगट होता है तो वह असली अवस्था नहीं है। असली अवस्था तो उनमुनि अवस्था ही है, अव्यक्त अवस्था ही है। यहां यह बात ध्यान देने की है कि प्रगट अवस्था से ही अप्रगट अवस्था की प्राप्ति होती है। इसप्रकार सत्गुरू ही हमको यह युक्ति बताते हैं जिससे वह अवस्था प्राप्त होती है। वह युक्ति क्या है? वह है 'सुरत–शब्द–योग'। अपने पूर्व के ऋषियों के हम ऋणी है जिन्होंने हमारी सुरत को कुण्डलीनी योग के द्वारा ऊपर उठाने का तरीका बताया। लेकिन तीन युग बीत गये उनके द्वारा बताये गये तरीके से साधन करते–करते परंतु किसी को भी अभीष्ट की प्राप्ति नहीं हुई। इसलिए कलियुग में जैसा कि संत तुलसीदास जी ने कहा है–

चहुं युग चहुं स्रुत नाम प्रभाऊ।
कलि विशेष नहीं आन उपाऊ।।

अर्थात् कलियुग में मालिक से मिलने का एक ही रास्ता है और वह है नाम या शब्द। अर्थात् इससे पहले शब्द का पता किसी को भी नहीं था। कलियुग में मालिक ने संतों के रूप में प्रकट होकर शब्द को प्रकट किया।

दया मेहर से करनी करावें– यह करनी क्या है? सत्गुरू किसी भी अधिकारी जीव को देखकर दया वश जो भी आदेश दें या करने को कहें, बस वही नाम है और उस वचन को पूरा करना ही करनी है। ऐसी करनी कर्म नहीं है क्योंकि कर्म चोहे अच्छा हो या बुरा बंधन का कारण बनता है और करनी करने से बंधन मुक्त हो जाता है। अच्छे कर्म करने से अच्छी योनी मिल जायगी और सोने की जंजीर से बांधे जाआगे, बुरे कर्म करने से लोहे की जंजीर से बांधें जाओगे। कृष्ण ने कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोंग, निष्काम कर्मयोग बतलाया, लेकिन भागवत् पुराण कहती है कि पांचों पांडच नर्क में गये। तो कर्म तो जैसे भी करोगे उनका फल तो भोगना ही पड़ता है। सत्गुरू हमसे कर्म नहीं कराता। सत्गुरू के आदेश पर जब आप चलोगे तो वह करनी करोगे और उसी को कहते हैं असली नाम और यह करनी कर्म बंधन में नहीं फंसाती बल्कि उल्टे बंधनों को काटने का साधन बन जाती है। कर्म और करनी में बस यही फर्क है। समझे कुछ।

सबको राधास्वामी

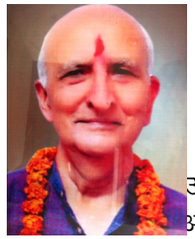

मेरे आराध्य देव

(संत सतगुरू वक्त)

प्रत्येक युग की समस्यायें प्रथक होती हैं अतः उनका समाधान भी हर युग में युग–पुरूष स्वयं ही अवतार लेकर उस युग की मांग के अनुसार ही करता है। इसके बाद वह अपने मिशन को आगे चलाने के लिये अपना ज्ञान और अपनी जिम्मेदारी दूसरे समर्थ युग–पुरूष को सौंप जाता है ताकि यह सिलसिला जारी रहे। आज के युग में मानव अपनी भौतिक–विज्ञानी सभ्यता के एकांगी रास्ते पर चलता हुआ भीषण संकट में उलझ गया है जिससे बचकर निकलना असंभव सा प्रतीत हो रहा है। परम दयाल जी महाराज ने तो इसकी चेतावनी 60 वर्ष पूर्व ही दे दी थी कि, "ऐ मानव! तू अपने किये हुये कुसंकल्पों और कुकर्मों के दुष्परिणाम से नहीं बच सकता। प्राकृतिक आपदा जैसे भुखमरी, अकाल, भूकम्प, कटरीना, सुनामी, ग्लोबल वार्मिंग आदि तेरी तबाही कर देंगीं और जरूर करेंगीं। किन्तु उन्होंनें करूणा और वात्सल्य भरे दिल से द्रवित होकर मनुष्य को सर्वनाश से बचाने के लिये **'शुभ संकल्प और मानवता'** का मार्ग भी बता दिया था जिस पर चलकर मानव उक्त आसन्न संकट से उबर सकता है और अपनी थाती को सुरक्षित रख सकता है अन्यथा तबाही तो जरूर आयगी।

परम दयाल जी महाराज की शिक्षा को सुमधुर भाषा में अपने अनुभव के आधार पर हुजुर मानव दयाल जी महाराज ने देश–विदेश में जी–जान से आखरी सांस तक प्रचारित और प्रसारित किया। इस मशाल को अक्षुण जलते रहने के लिये वे इसे सशक्त, अनुभवी और अति विनीत स्वभाव वाले संत सतगुरू वक्त हुजुर शब्दानन्द जी को सौंप गये। अगर हुजुर शब्दानन्द जी महाराज का प्राक्टय न होता और वे हुजुर मानव दयाल जी महाराज को न संभाल कर रखते तो मुझ जैसे न जाने कितने जीव गुरू के शब्द जहाज में चढ़ने से वंचित रह जाते। हुजुर शब्दानन्द जी महाराज ने अपने गुरू की शिक्षा और ज्ञान को बड़े प्रेम से विनय पूर्वक साधारण जीवों के लाभ के लिये पुस्तकीय रूप में सहज कर रख छोड़ा है।

शेष अगले अंक में .....

दासोहम पुष्कर दयाल

धुरपद धाम में आगामी सत्संग सूचना

तिथि एवं कार्य–क्रम

क्र.स.	दिनांक	समारोह विवरण	सतसंग का समय
1.	रविवार 13 अप्रेल	वैसाखी	प्रातः 10 से 1 बजे तक
2.	शनिवार 12 जुलाई	गुरू पूर्णिमा	प्रातः 10 से 1 बजे तक
3.	5 सितम्बर	परमपूज्य मानव दयाल जी महाराज का प्रकाशोत्सव	प्रातः 10 से 1 बजे तक
4.	2 अक्टूबर	दशहरा सत्संग	प्रातः 10 से 1 बजे तक सांय 7 से 9 तक
5.	3 अक्टूबा	दशहरा सत्संग	प्रातः 10 से 1 बजे तक
6.			

स्वामित्व–अखण्ड मानवता मंदिर प्रतिष्ठान न्यास पलवल
हथीन रोड़, दुर्गापुर, जिला पलवल, हरियाणा 121102
सम्पादक मंडल– श्री राजेश, श्री विरेन्द्र, श्री प्रेम सुख
मुद्रक–पी0 एस0 प्रींटर्स बल्लभगढ़ जिला फरीदाबाद हरियाणा
प्रकाशक–जनरल सेक्रेटरी, अखण्ड मानवता मंदिर प्रतिष्ठान
न्यास पलवल हथीन रोड़, दुर्गापुर, जिला पलवल,
हरियाणा 121102 फोन न0 09991484747

हमारे सभी सत्संगी भाईयों और बहनों तथा सभी श्रद्धालु पाठकों को नव वर्ष 2014 की शुभ कामनाएं। नव वर्ष आप सबके लिए मंगलमय हो और शान्ति प्रदान करे।

Visit us on:
www.akhandmanavtadham.in